मैथिल कवि विद्यापति ठक्कुर कृत

कीर्तिलता

संपादक

बाबूराम सक्सेना एम० ए० डी० लिट्०

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी
तृतीय संस्करण २०००, सं० २०१४
मूल्य ३॥)

श्री

कीर्तिलता

उपोद्घात

तीन साल के लगभग हुए जब नागरी-प्रचारिणी सभा के मन्त्री ने कीर्तिलता के संस्करण का भार मुझ पर सौंपा। उन्होंने समझा मैथिल-रचित ग्रन्थ है इसका संस्करण मैथिल के द्वारा होना चाहिये। पर जब मैंने इस ग्रन्थ को देखा तो इसकी भाषा संस्कृत तथा आधुनिक मैथिल दोनों से इतनी भिन्न देख पड़ी कि इस भार के उठाने का साहस शिथिल होने लगा—विशेषतः इस दृष्टि से कि इस ग्रन्थ के संस्कर्ता को भाषाविज्ञानवेत्ता होना आवश्यक है। उत्साह तो शिथिल हुआ पर काम लौटा दूँ सो भी उचित नहीं जान पड़ा। फिर स्मरण हुआ कि मेरे प्राचीन शिष्य श्रीमान् बाबूराम सक्सेना एम० ए० ने, जो आजकल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापक हैं, भाषाविज्ञान में अच्छा परिश्रम किया है। इसलिये इस भार को मैंने उन्हीं के ऊपर सौंप दिया। कभी-कभी बाबूरामजी को संदेह होता था तो मुझसे पूछ लिया करते थे। पर सहायता मुझसे बहुत नहीं मिल सकती थी। मैं बाबूरामजी का बड़ा कृतज्ञ हूँ। जैसी सुन्दर रीति से उन्होंने ग्रन्थ का सम्पादन किया है मुझसे कभी नहीं हो सकता था। आशा है नागरी-

प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी-रसिक-समाज इस कार्य से सन्तुष्ट होंगे, मुझसे साक्षात् यह काम नहीं हो सका इस अपराध को क्षमा करेंगे।

कीर्तिलता की भाषा के वैशिष्ट्य के प्रसंग में बाबूरामजी एक लेख लिख रहे हैं सो पृथक् प्रकाशित होगा। 'भूमिका' इत्यादि में उतने लम्बे लेख का स्थान नहीं हो सकता।

विश्वविद्यालय
प्रयाग
१७-६-२६

गङ्गानाथ झा

भूमिका

सामग्री

१. प्रस्तुत पुस्तक को तय्यार करने के लिए नीचे लिखी पुस्तकों का उपयोग किया गया है—

पोथी (क)—यह ६ इञ्च × ४½ साइज़ के २६ पन्नों (५० पृष्ठों) में मूल नेपाल दर्बार के पुस्तकालय में रक्खी हुई कीर्तिलता की नकल है। मूल पुस्तक का विवरण यहाँ पृ० ११४ पर दिया है। नकल में प्रत्येक पृष्ठ में सात लाइनें हैं, केवल अंतिम में पाँच। प्रस्तुत संस्करण तैयार करने के लिए महा-महोपाध्याय डा. श्री. गंगानाथ झा ने यह नकल करवाकर मँगवाई थी।

पोथी (ख)—यह ७ इञ्च × ३¾ साइज़ के २६ पन्नों (५१ पृष्ठों) में हस्तलिखित प्रति है। इसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने पं० महादेवप्रसाद चतुर्वेदी (ग्रा० असनी, अश्विनीकुमार का मन्दिर, जिला फ़तहपुर) से अपने किसी कर्मचारी द्वारा प्राप्त किया था।

पुस्तक (शा०)—यह कीर्तिलता का छपा हुआ बँगला संस्करण है। पं० हरप्रसाद शास्त्री अपनी नेपाल-यात्रा के समय दर्बार पुस्तकालय की प्रति की नकल करा लाए थे और फिर मूल पोथी मँगाकर उससे तुलना करके नकल को यत्र-तत्र शुद्ध कर लिया था। उसी को एक विद्वत्तापूर्ण बँगला भूमिका और अनुवाद के साथ बंगीय सन् १३३१ में सम्पादित करके छपवाया। सम्पूर्ण पुस्तक बँगला अक्षरों में है।

२. प्रस्तुत संस्करण का पाठ उपरिलिखित तीन पुस्तकों से तय्यार किया गया है। पोथी (क) और शास्त्रीजी की पोथी दोनों एक ही मूल पुस्तक पर निर्भर हैं। लिखने की अशुद्धि अथवा प्रमाद के कारण कहीं कहीं इन दोनों में पाठ की विभिन्नता है, इसको फ़ुटनोट में दिखला देने का प्रयत्न किया गया है। पाठ तय्यार करते समय प्रायः सम्पूर्णतया (क) पोथी का ही आश्रय लिया गया है। फ़ुटनोट के पाठ प्रायः सभी (ख)

पुस्तक के हैं, जहाँ-जहाँ (ख) पुस्तक के पाठ को अच्छा समझा गया है वहाँ (क) पोथी का पाठ निर्देश करके फुटनोट में दे दिया गया है। इसी प्रकार शास्त्रीजी के संस्करण का पाठ (शा०) निर्देश करके फुटनोट में दिया गया है। फुटनोट में जहाँ (क) अथवा (शा०) यह निर्देश न हो वहाँ (ख) समझ लेना चाहिए।

(ख) पुस्तक का महत्त्व इस बात में है कि वह मूल प्रति जो नेपाल दर्बार के पुस्तकालय में है उसकी नकल नहीं है। इसका पता नहीं कि यह कब उतारी गई और किस प्रति से। इसके पाठ प्रायः अशुद्ध हैं, लेखक को संस्कृत का ज्ञान बिलकुल नहीं था। पाठ-भेद का विवेचन करने से यह मालूम पड़ता है कि यह कहीं इसी प्रान्त में लिखी गई, मैथिली विशेषताओं के स्थान में प्रायः इसमें पूर्वी हिंदी की विशेषताएँ मिलती हैं। इस पोथी के पत्र ७ का फोटो दिया जा रहा है।

शास्त्रीजी की पुस्तक का महत्त्व उसके पाठ के लिए उतना नहीं है जितना उसकी भूमिका और अनुवाद के लिए। कीर्तिलता ऐसी पुरानी पुस्तक का ठीक अर्थ निकाल लेना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। पाठक को पद-पद पर ऐसे शब्द मिलेंगे जिनका अर्थ न कोई कोश बताता है न व्याकरण। ऐसे स्थलों में शास्त्रीजी के अनुवाद से यथेष्ट सहायता मिली है। कहीं-कहीं अनुवाद करने में उनकी लगाई हुई अटकल भ्रमात्मक जान पड़ती है। ऐसे स्थानों पर या तो हमने अपनी मति के अनुसार अनुवाद करके प्रश्नात्मक चिह्न बना दिया है या अनुवाद किया ही नहीं है। परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। (ख) पुस्तक के पाठ से तुलना करके भी कहीं-कहीं अर्थ का भास हो गया है। भाषाविज्ञान की ओर दृष्टि रखते हुए शास्त्रीजी का अनुवाद स्थान-स्थान पर अशुद्ध जान पड़ा। वहाँ भी हमने अनुवाद शुद्ध करने का प्रयत्न किया है। एक आध प्राचीन मैथिल पंडित से भी सहायता लेने का प्रयत्न किया गया परन्तु इस भाषा पर उनका पांडित्य भी अधिक काम में नहीं आया।

———

कीर्तिलता के कर्ता

विद्यापति

कीर्तिलता के लेखक सुप्रसिद्ध कवि विद्यापति ठक्कुर हैं। बहुत दिनों तक विद्यापति को बंगाली समझा जाता रहा। परन्तु अब यह पूरी तरह निश्चित है कि यह मिथिला प्रदेश के निवासी थे, वहीं इनका जन्म हुआ, वहीं इनका जीवन कटा और वहीं यह पञ्चतत्त्व को प्राप्त हुए।

इनका निवासस्थान बिसपी ग्राम था। इसे गढ़बिसपी भी कहते थे। यह गाँव दरभंगा जिला में कमतौल स्टेशन से चार मील पर है। इसमें इनके पूर्वज बहुत दिनों से रहते आए थे। इनकी वंशावली[1] इस प्रकार है—

त्रिपाठी कर्मादित्य ठक्कुर
|
देवादित्य सान्धिविग्रहिक
|
वीरेश्वर[2] — गणेश्वर — जयदत्त

- वीरेश्वर → चण्डेश्वर
- गणेश्वर → रामदत्त
- जयदत्त → गणपति ठक्कुर → विद्यापति
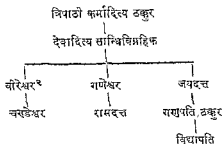
१—यह वंशावली डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अँगरेजी लेख 'कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर' (चौथी ओरिवेंटल कान्फरेंस १६२६) से ली गई है।

२—इनके नाम का एक मठ मधीगाछी (जि० दरभंगा) से चार मील पूरब है।

इस वंश के प्रायः सभी लोग असाधारण पण्डित थे। कोई-कोई इसके अतिरिक्त राजाओं के प्रतिष्ठित मन्त्री भी थे।

कर्मादित्य त्रिपाठी राजमन्त्री थे और इस वश के आदि पुरुष विष्णु शर्मा ठक्कुर के पोते थे। इनका नाम मिथिला के तिलकेश्वर नाम के शिवमठ की कीर्तिशिला मे खुदा है और ल० सेन का २१३ सवत्[1] दिया है। देवादित्य के नाम के साथ सान्धिविग्रहिक पद मिलता है जिससे पता चलता है कि यह जिस राजा के कर्मचारी थे उसके शत्रु के साथ सन्धि अथवा संग्राम करने का इनको पूर्ण अधिकार था। विद्यापति के पितामह जयदत्त के दूर के चचेरे भाई ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य थे। इन्होंने संस्कृत भाषा मे 'पञ्चसायक', 'धूर्तसमागम', 'रङ्गशेखर' और मैथिली मे 'वर्णरत्नाकर' ग्रन्थ बनाए जो बडे महत्व के हैं। वीरेश्वर ठक्कुर भी राजमन्त्री थे और इन्होंने 'छन्दोग दश कर्म पद्धति' नाम की पुस्तक लिखी। यह पुस्तक अब भी मिथिला मे प्रचलित है। वीरेश्वर के पुत्र चण्डेश्वर ने 'विवाद-रत्नाकर', 'राजनीतिरत्नाकर' आदि सात रत्नाकर ग्रन्थों की रचना की थी। विद्यापति के पिता गणपति ठक्कुर कीर्तिलता के नायक कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर के सभापंडित तथा मन्त्री थे। गणपति ठक्कुर ने गगाभक्ति तरगिणी नाम की पुस्तक लिखी। इस प्रकार इस वश मे सरस्वती देवी की पूर्ण भक्ति से पूजा होती रही। विद्यापति इस वंश के सबसे जाज्वल्यमान रत्न हुए।

विद्यापति को इनके पिता राजा गणेश्वर के दरबार मे अपने साथ ले जाया करते थे। इन्होंने विद्याध्ययन प० हरिमिश्र से किया था। हरिमिश्र के भतीजे प्रख्यात पक्षधर मिश्र इनके सहपाठी थे। विद्यापति ने कीर्तिसिंह की कीर्ति फैलाने के लिये दो पुस्तकें लिखीं—कीर्तिलता और कीर्तिपताका। कीर्तिसिंह के उत्तराधिकारी देवसिंह के विषय

१—राजा लक्ष्मण सेन १११६ ई० मे राजगद्दी पर बैठे तब से उनका सम्वत् प्रारम्भ होता है।

में भी विद्यापति के कई पद मिलते हैं। इसके उपरांत देवसिंह के पुत्र शिवसिंह महाराज के विषय में विद्यापति के सैकड़ों पद हैं ! शिवसिंह की मृत्यु के उपरांत राजा पुरादित्य के यहाँ यह रहे। तदनंतर शिवसिंह के उत्तराधिकारी पद्मसिंह और हरिसिंह के लिये भी इन्होंने ग्रन्थ रचे। इनकी अंतिम रचना भक्तितरंगिणी धीरसिंह के राजत्वकाल में समाप्त हुई।

इन बातों से सिद्ध होता है कि विद्यापति चिरकाल तक जीवित रहे। कीर्तिलता से पता चलता है कि गणेश्वर राजा का वध ल० सं० संवत् २५२ में हुआ। विद्यापति गणेश्वर की सभा में अपने पिता गणपति ठक्कुर के साथ जाया करते थे, इसलिये गणेश्वर की मृत्यु के समय इनकी अवस्था दस बारह साल की अवश्य रही होगी। धीरसिंह के राजत्वकाल में प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबंध' की 'सेतुदर्पणी' नाम की एक टीका लिखी गई थी, उसमें ३२१ ल० सं० में धीरसिंह राज्यासन पर विराजमान बताए गए हैं। इन्हीं धीरसिंह के समय में विद्यापति ने अपनी दुर्गाभक्तितरंगिणी समाप्त की थी। विद्यापति को २९३ ल० सं० में बिसपी ग्राम दान में राजा शिवसिंह से मिला था। इस दान का ताम्रपत्र अब भी मौजूद है। विद्यापति का निम्नलिखित पद देवसिंह (शिवसिंह के पिता) की मृत्यु के विषय में मिलता है:—

अनल[३] रन्ध्र[९] कर[२] लक्खन नरवइ सक समुद्द[४] कर[२] अगिनि[३] सस[१]।
चैत कारि छटि जेठा मिलिओ वार वेहप्पय जाहु लसी॥
देवसिंह जु पुहुमि छड्डिअ अद्धासन सुर राअ सरू।

इससे पता चलता है कि ल० सं० २९३ में देवसिंह की मृत्यु हुई और उसी वर्ष शिवसिंह राजगद्दी पर बैठे और बिसपी गाँव विद्यापति को प्रदान किया। मिथिला में यह जनश्रुति प्रचलित है कि शिवसिंह पचास वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे और विद्यापति अवस्था में इनसे दो वर्ष

बड़े थे। इस प्रकार २९३ मे विद्यापति की ५२ वर्ष की अवस्था मालूम पड़ती है। अतएव इनका जन्म ल० स० २४१ में हुआ होगा। विद्यापति की मृत्यु की तिथि का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। शिवसिंह के राजगद्दी पर बैठने के तीन ही वर्ष बाद अर्थात् ल० सं० २९६ में उन पर मुसल्मान सेना ने चढ़ाई की और सग्रामभूमि से वह घर नहीं लौटे। तब विद्यापति लखिमा देवी को साथ ले जाकर राजबनौली में जाकर रहे। यहाँ २९९ ल० स० में राजा पौरादित्य के लिये 'लिखनावली' रची और यहीं ३०९ में 'भागवत' का एक प्रति लिखना समाप्त किया। इसलिये ३०९ तक अर्थात् ६९ वर्ष की आयु तक इनका जीवित रहना प्रमाण-सगत है। इनकी अंतिम रचना दुर्गाभक्तितरंगिणी राजा धीरसिंह के समय में समाप्त हुई। धीरसिंह का ठीक ठीक राजकाल जब तक न मालूम हो, और यह न मालूम हो कि दुर्गाभक्तितरंगिणी राजकाल के किस वर्ष में समाप्त हुई तब तक कुछ निश्चय इसी आधार पर नहीं किया जा सकता। केवल इतना मालूम है कि ३२१ ल० सं० में धीरसिंह राजासन पर विराजमान थे।

विद्यापति का एक पद यह है:—

सपन देखल हम सिवसिंघ भूप।
बतिस बरस पर सामर रूप॥
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन।
आब भेलहुँ हम आयुविहीन॥
सिमदु सिमदु निअ लोचन नीर।
ककरहु काल न राखथि थीर॥
विद्यापति सुगातिक प्रस्ताव।
त्याग के करुना रसक सुभाव॥

इससे पता चलता है कि शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष बाद (३२८ ल० सं० में) विद्यापति को स्वप्न दिखाई दिया, इससे वह ८७-८८ वर्ष

तक जीवित रहे, ऐसा अनुमान युक्तिसंगत जान पड़ता है। संभवतः इसके दो एक वर्ष बाद उनका देहान्त हो गया। इनकी मृत्युतिथि के विषय में

'विद्यापति क आयु अवसान।
कातिक धवल त्रयोदसि जान॥'

यह पद प्रचलित है।

विद्यापति के जीवन की मोटी-मोटी बातें ऊपर दी जा चुकी हैं। इनका ओइनी वंश के राजाओं से विशेष सम्बन्ध रहा। उन्हीं की सभाओं के यह सम्मानित पण्डित रहे। केवल राजा शिवसिंह के लोप के उपरान्त इनका कुछ दिन राजबनौली में रहना सिद्ध होता है।

विद्यापति का पाण्डित्य तथा इनकी कविता का लालित्य इनके जीवन-काल में ही प्रसिद्ध हो गया था। २९३ ल० स०. में जिस ताम्रपत्र द्वारा इनको बिसपी ग्राम दान में मिला था उसमें इनका उल्लेख 'नव-जयदेव महाराजपण्डित' करके किया गया है। यह संस्कृत के अद्वितीय पंडित थे और संस्कृत तथा मैथिली में ग्रंथ निर्माण करने में अतीव पटु।

ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने अपनी अवस्था के अनुसार सब रसों का उपभोग किया था। यह वीरता और दानशीलता के बड़े प्रशंसक थे। यौवनावस्था में इनके पदों को पढ़कर इनकी शृंगार रस की सूझ की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। वृद्धावस्था में इनको वैराग्य और भक्ति से लगन लग गई। बिहार में जनश्रुति है कि जब यह मरणासन्न हुए तो गंगा की ओर पालकी में प्रयाण किया। गंगा के प्रवाह से जब दो कोस यह रह गए तब इन्होंने कहा कि जब मैं गंगामैया के लिये इतनी दूर चलकर आया हूँ तो क्या मैया मेरे लिये दो कोस भी नहीं आ सकती। यह कहकर इन्होंने पालकी वहीं रखवाकर विश्राम किया और कहते हैं कि गंगा का प्रवाह वहीं आकर उनको अपने अन्त-

स्थल में ले गया। इससे विद्यापति की दृढ भक्ति का परिचय मिलता है।

विद्यापति के पदों में शृंगारात्मक पद अधिक हैं और बहुधा कृष्ण और राधा के प्रेम के। इनके पदों का प्रचार बंगाल के वैष्णवों में बहुत ही रहा है। कहते हैं कि श्री चैतन्यदेव इनके पदों को गाते-गाते तल्लीन हो जाते थे। इस बात से लोगों की यह धारणा हो गई थी कि विद्यापति वैष्णव थे। परन्तु यह धारणा भ्रमात्मक है। विद्यापति शिवजी के विशेष उपासक थे और अन्य मैथिल पंडितों की तरह कर्मठ स्मार्त और शक्ति के भक्त थे। बिसपी गाँव से उत्तर भेड़वा गाँव में एक बाणेश्वर महादेव का मन्दिर है। कहते हैं विद्यापति इन्हीं महादेव का पूजा किया करते थे। शृंगारकविता राधाकृष्ण के सहारे करने का और उनके प्रेम की ओट में अपने हृदगत उद्‌गारों को प्रकाशित करने का रवाज उत्तरीय भारत की प्रायः सभी भाषाओं में है।

विद्यापति के पदों के अध्ययन से पता चलता है कि वह बड़े शृंगारी कवि थे। इन पदों में उन्होंने हृदय के उन भावों का स्पष्टता के साथ वर्णन किया है जिनकी भावना भी साधारण कवि नहीं कर सकते। इन पदों को राधाकृष्ण की भक्ति पर आरोपित करना पदपदार्थ के प्रति अन्याय है। पर टीकाटिप्पणीकारों की दौड़ को कौन रोक सकता है? कवि विद्यापति के रसिक होने का परिचय उनके प्रथम ग्रंथ कीर्तिलता के ही पढ़ने से हो जाता है। जौनपुर की वेश्याओं का और वहाँ की बनिनियों का जो वर्णन उन्होंने किया है वह उनके रसिक शृंगारी होने का पूर्ण परिचायक है। 'राधाकृष्ण' का प्रेम भक्तिरूप रहा—हो हो सकता है। पर इधर आकर कवियों ने उस प्रेम का जो वर्णन किया है उसके शब्दों में भक्तिभाव का लेशमात्र भी नहीं भासित होता।

१—वरनी जंकशन स्टेशन के पास विद्यापति का बनवाया एक शिव मन्दिर मौजूद है।

विद्यापति ठक्कुर कोई ६० वर्ष तक जीवित रहे। इनकी पत्नी का स्पष्ट उल्लेख इनके किसी पद में नहीं मिलता। इनके एक पुत्र था जिसका नाम था हरिपति और एक पुत्री जिसको दुलही कहते थे। अपनी कन्या को सम्बोधित करके कवि ने कई पद कहे हैं। इनकी पुत्र-वधू का नाम 'चन्द्रकला' था। 'चन्द्रकलाजी' के नाम की एक कविता लोचन कवि-संग्रहीत 'राजतरंगिणी' में मौजूद है।

विद्यापति के परम मित्र इनके गुरु के भतीजे श्री० पक्षधर मिश्र थे। पक्षधर के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है जो मनोरंजक है। विद्यापति ने एक अतिथिशाला बिसपी गाँव में बनवा रक्खी थी जिसमें प्रत्येक अभ्यागत को भोजन कराया जाता था। एक बार विद्यापति-शाला में आकर पूछने लगे कि क्या सबको भोजन कराया गया। सबने कहा हाँ, परन्तु कोने में एक दुर्बलकाय ब्राह्मण देवता बैठे थे, उनको भोजन नहीं मिला था। विद्यापति ने जब पास जाकर देखा तो उनके मित्र पक्षधर निकले। अवहेलना का समाधान करते हुए विद्यापति बोले—

'प्राघुणो घुणवत्कोणे सूक्ष्मत्वान्नोपलक्षितः'

अर्थात् 'अतिथि महाशय घुन के समान छोटे थे इसलिए कोई देख न पाया'। इस पर पक्षधरजी तुरन्त बोल उठे—

'नहि स्थूलधियः पुंसः सूक्ष्मे दृष्टिः प्रजायते'।

अर्थात् 'स्थूलबुद्धि पुरुष की दृष्टि सूक्ष्म वस्तु की ओर नहीं जाती'।

विद्यापति की रचनाएँ

विद्यापति ने संस्कृत और मैथिली में अनेक रचनाएँ की थीं। उनमें से नीचे लिखे ग्रन्थ प्राप्य हैं—

(१) कीर्तिलता—यह इनका प्रथम ग्रंथ है। कहते हैं कि विद्यापति ने इसे २० वर्ष की अवस्था में बनाया था, इसलिये यह इनका प्रथम ग्रंथ माना जाता है। इसका सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा।

(२) भूपरिक्रमा—यह भी संस्कृत भाषा में है और आजकल के गजेटियर की तरह है। इसकी मूल कथा यह है कि बलरामजी को शाप दिया गया। तब वह शापग्रस्त होकर प्रायश्चित के लिए प्रत्येक तीर्थ में गए! उसी का वर्णन है और साथ-साथ रोचक कहानियाँ भी दी हैं। यह पुस्तक राजा देवसिंह की आज्ञा से लिखी गई थी।

(३) पुरुषपरीक्षा—यह संस्कृत ग्रन्थ राजा शिवसिंह के समय में उन्हीं की आज्ञा से लिखा गया। इसमें पुरुषों के लक्षण कहानी के रूप में दिए गए हैं। दयावीर, दानवीर, हास्यवीर आदि पुरुषों की कहानियाँ हैं। इसका एक संस्करण मूल संस्कृत और मैथिली अनुवाद सहित दरभंगा में छपा था और एक मूल संस्कृत का सम्करण डा० गगानाथ भा द्वारा सम्पादित वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

(४) कीर्तिपताका—यह मैथिली का ग्रन्थ है, इसकी एक खंडित प्रति नेपाल दरबार पुस्तकालय में है। 'इसमें प्रेम कविताएँ हैं।'

(५) लिखनावली—यह संस्कृत ग्रंथ राजबनौली के राजा पुरादित्य के लिये २६० ल०सं० में लिखा गया था। इसमें सस्कृत में पत्रव्यवहार करने और प्रशस्ति, तमस्सुक आदि के लिखने के नियम और मसविदे दिए हैं। इसकी दरभगा में छपी एक प्रति डा० गगानाथ भा के पास है।

(६) विभागसार—इस संस्कृतग्रंथ में दायभाग के अनुसार सम्पत्ति के बटवारे के नियम दिए हैं। इसकी प्रति डा. गगानाथ भा के पास है।

(७) वर्षक्रिया (सधवा-कृत्य)—इस संस्कृत ग्रन्थ में बारहो महीनों के पर्वों की विधि दी है।

(८) गयापत्तल—इस संस्कृतग्रन्थ की भी रचना विद्यापति ने की थी परन्तु यह ग्रन्थ अभी खोज में मिला नहीं है। गयाश्राद्धकर्म संबंधी वाक्यों का संग्रह है।

(९) शैवसर्वस्वसार—यह संस्कृत में है। इसमें शिव की पूजा की विधि दी हुई है और साथ ही साथ भवसिंह से लेकर विश्वासदेवी

तक के समय के राजाओं की कीर्तिकथा है। यह ग्रंथ शिवसिंह की मृत्यु के बहुत दिनों बाद रानी विश्वासदेवी के समय में लिखा गया। इसकी एक प्रति महाराज दरभंगा के पुस्तकालय में है।

(१०) गंगावाक्यावली—यह भी संस्कृत में है और गंगास्नान से लेकर गंगातट में दान इत्यादि के संकल्पवाक्यों का संग्रह है। यह भी रानी विश्वासदेवी के समय में लिखी गई।

(११) दानवाक्यावली—यह भी संस्कृतभाषा का ग्रन्थ है और राजा नरसिंहदेव की स्त्री धीरमति को समर्पित किया गया है। इसमें भी प्रधान दान के १२ संकल्प-वाक्यों का संग्रह है।

(१२) इनकी अन्तिम पुस्तक दुर्गाभक्तितरंगिणी है। यह राजा धीरसिंह के समय में समाप्त हुई। इसमें दुर्गापूजा के प्रमाण और प्रयोग दिए हैं। यह ग्रन्थ महाराज दरभंगा की आज्ञा से १६०२ में मुद्रित हुआ।

(१३) पदावली—विद्यापति ने समय समय पर जो पद मैथिली भाषा में विविध विषयों पर कहे थे, उन्हीं के संग्रह को पदावली कहते हैं। राजतरंगिणी के लेखक लोचन के लेखानुसार राजा शिवसिंह ने 'जयत' नाम का एक कायस्थ लड़का विद्यापति के पदों को लेख-बद्ध करने के लिये नियुक्त कर दिया था। पदावली के कई संस्करण निकल चुके हैं। इनमें से बँगला में नगेन्द्रनाथ गुप्त का संस्करण और हिंदी में बा० ब्रजनन्दन सहायजी का संग्रह प्रसिद्ध है। गुप्तजी के संग्रह में ६५४ पद हैं। बा० ब्रजनन्दन सहाय के संग्रह में बहुत कम। विद्यापति के बहुत से पद अभी लेख-बद्ध नहीं हैं। लहेरियासराय के हिन्दी-पुस्तक-भंडार के संचालक श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी पदावली का एक संस्करण निकालने के लिए सामग्री इकट्ठी कर रहे हैं। उनके 'विद्यापति' को देखकर आशा होती है कि यह संस्करण जब कभी भी निकले, आदरणीय होगा।

विद्यापति के हाथ की लिखी श्रीमद्भागवत की पोथी, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, दरभंगा से दस कोस दूर तरौनी गांव में जयनारायण झा की विधवा पत्नी के पास सुरक्षित है। ग्रन्थ की पत्र संख्या ५७६ है। प्रत्येक पत्र के दोनों ओर लिखावट है। प्रत्येक पृष्ठ में छः पंक्तियाँ हैं। साइज २ फुट १३ इं० × २३ इं० है। ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

शुभमस्तु सर्व्वजगतां संख्या ल० सं० ३०९ श्रवण शुक्ल १५ कुजे राजबनौली ग्रामे श्री विद्यापति लिपिरियमिति। विद्वानों का मत है कि वस्तुतः यह पोथी विद्यापति की लिखी है।[1]

कीर्तिलता का विषय

विद्यापति के प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह थे। इन्हीं की कीर्ति का गुण कीर्तिलता में कवि ने गाया है। ग्रन्थ के आदि में संस्कृत में मंगलाचरण के दो श्लोक हैं, तदनन्तर एक श्लोक में कलयुग की दुरवस्था का वर्णन है जिसमें बताया गया है कि इस युग में कविता बहुत है, सुननेवाले और रसज्ञाता भी बहुत हैं परन्तु दाता दुर्लभ हैं। दाता हैं श्रीकीर्तिसिंह। वह काव्य के पारखी हैं। उनकी कीर्ति के फैलाने की इच्छा कवि के मन में उत्पन्न हुई।

इसके उपरान्त कवि अपनी विनय दिखाता है और कहता है कि उसका काव्य ऐसा वैसा है परन्तु यद्यपि दुर्जन उस पर हँसेंगे तथापि सज्जन उसकी प्रशंसा करेंगे। अपनी कविता के बारे में कवि की एक गर्वोक्ति भी है-विद्यापति की कविता पर दुर्जन की हँसी का कुछ प्रभाव

---

१. विद्यापति के विषय में ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसमें श्री हरप्रसाद शास्त्री जी की 'कीर्तिलता' की भूमिका से तथा श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी के 'विद्यापति' की भूमिका से पूरी सहायता ली गई है।

नहीं पड़ता, यह नित्य ही रसिकजनों का मनोरंजन करती है। इसके उपरान्त भी कवि दो एक छन्दों में सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा करता है। इसी प्रकार की प्रस्तावना तुलसीदास के रामचरित-मानस की है। वहाँ भी सज्जन और दुर्जन दोनों का विस्तृत वर्णन है।

एक छन्द में कवि देशी भाषा 'अपभ्रंश'[१] में रचना का कारण देकर प्रस्तुत विषय भृङ्गी और भृङ्ग के प्रश्नोत्तर से प्रारंभ करता है। इसी प्रकार कथा कहानी आरंभ करने का ढंग 'तोतामैना' आदि प्रबन्धों में भी है। भृङ्गी पूछती है—'संसार में सार क्या है'? भृङ्ग उत्तर देता है—'मानपूर्वक वीर पुरुष का जीवन'। भृङ्गी पूछती है—'वीरपुरुष कौन है?' भृङ्ग वीर पुरुष के लक्षण देकर दो चार वीर पुरुषों (बलि, रामचन्द्र आदि) के नाम बताता है और अन्त में कीर्तिसिंह का नाम लेता है।' भृङ्गी को इनका चरित सुनने की इच्छा होती है और भृङ्ग उसको कहता है—

'जगत्प्रसिद्ध ओइनी वंश का हाल किस प्रकार कहूँ, जिसमें कामेश्वर, योगीश्वर और गणेश्वर राजा हुए। गणेश्वर के पुत्र श्रीमद्वीरसिंह देव जिनके छोटे भाई राजा कीर्तिसिंह। इन्होंने शत्रु का नाश करके डूबते हुए राज्य का उद्धार किया और रूठी राज्य-लक्ष्मी को फिर मनाकर घर लाए' ॥ १ ॥

भृङ्गी पूछती है कि किस प्रकार वैर उत्पन्न हुआ और कैसे उसका उद्धार किया गया। सब बातें विस्तार से कहिए।

भृङ्ग उत्तर देता है—

ल० सं० २५२ में राजा गणेश्वर ने 'असलान' नाम के एक मुसल्मान नवाब को परास्त किया। तब असलान ने कपट से राजा को बुलाकर राजा का वध कर डाला। चारों ओर अराजकता फैल गई।

१—इसका विस्तृत वर्णन आगे देखिए।

अन्त मे असलान को पश्चात्ताप हुआ और उसने राज्य वापस करना चाहा परन्तु वीरसिंह और कीर्तिसिंह ने प्रतिहिंसा की इच्छा से शत्रु-समर्पित राज्य स्वीकार न किया और पैदल ही शिकायत करने और सहायता माँगने के लिए बादशाह के पास चल दिए। बहुत कष्ट झेलकर जौनपुर श्री इब्राहिम शाह की राजधानी में पहुँचे जहाँ बाजार हाट की सैर करके एक ब्राह्मण के घर वास किया ॥ २ ॥

भृङ्गी को यह वृत्तान्त कर्णामृत सा जान पड़ता है वह फिर पूछती है और भृङ्ग कहता है—

कीर्तिसिंह प्रातःकाल वज़ीर से मिले। उसने बादशाह से भेंट करने की सलाह दी। शुभ अवसर पर भेंट हुई। कुशल वार्ता पूछी जाने पर पिता के वध और असलान की धृष्टता का हाल कहा। बादशाह असलान पर बहुत बिगड़े। तुरन्त उसके विरुद्ध प्रयाण करने का हुक्म हुआ। कीर्तिसिंह की आशा पूर्ण हुई। सेना की तैयारी के बीच में ऐसा जान पड़ा कि तैयारी पूर्व की ओर न प्रयाण करके पश्चिम की ओर जायगी। राजा की आशा टूट गई। परन्तु जब सेना चली तो साथ हो लिए। चारों ओर दिग्विजय करती हुई सुलतानी सेना चली। बहुत दिन लग गए। कीर्तिसिंह की दीन अवस्था को देखकर साथी एक एक कर साथ छोड़ने लगे। केवल दो, केशव कायस्थ और सोमेश्वर आगीर तक रहे। राजा ने एक बार फिर सुलतान से भेंट की। फर्मान जाहिर हुआ कि पूर्व को प्रयाण हो ।।३॥

भृङ्गी फिर पूछती है, "कहो कान्त कैसे सेना चली, तिरहुत में क्या हुआ और असलान की क्या गति हुई"? भृङ्ग कहता है—

अनगिनती सेना चली दूर दूर के राजाओं का गर्व चूर्ण करते हुए सुलतान ने तिरहुत में प्रवेश किया। सब बातें सुनकर सुलतान ने कहा असलान तो बड़ा बलवाला है। उसे कैसे पकड़ा जाय। तब कीर्तिसिंह आगे बढ़कर बोले, "प्रभो! आप दीन वचन न कहें। मे अभी उसको

परास्त करता हूँ।" तब सुलतान ने हुक्म दिया कि कीर्तिसिंह के साथ पूरी सेना पार हो। गंडक नदी के पार जाकर सुलतानी सेना असलान की सुसज्जित सेना से भिड़ी। घोर संग्राम हुआ। आकाश रुधिर से भर गया। वीरसिंह और कीर्तिसिंह पराक्रम कर रहे थे। असलान की सेना के पैर उखड़ गए। सेना को गिरते देख असलान ने एक बार साहस किया। तलवार लेकर कीर्तिसिंह पर टूट पड़ा। अर्जुन और कर्ण के युद्ध की याद आ गई। दोनों के शरीर से रुधिर की धाराएँ बह निकलीं। मलिक असलान ने हारकर पीठ दिखा दी। कीर्तिसिंह ने घोषणा की कि पलायित पर मैं शस्त्र नहीं चलाता। राजा को जयलक्ष्मी प्राप्त हुई। सुलतान ने अपने ही हाथ से कीर्तिसिंह का अभिषेक किया।

जब तक सूर्य और चन्द्र आकाश में रहें, कीर्तिसिंह राज्यसुख भोगते रहें और उनकी कीर्ति को फैलाने के लिये कवि विद्यापति की यह कीर्तिलता विद्यमान रहे।

यही कीर्तिलता का संक्षेप में विषय है। कथानक छोटा है परन्तु वर्णनात्मक चित्रों से भरपूर। गणेश्वर की मृत्यु के उपरान्त जो अराजकता फैली थी, उसका एक छोटा सा भावपूर्ण वर्णन है जो पढ़ते ही बनता है। दोनों राजकुमारों की जौनपुर की ओर पैदल यात्रा का करुणात्मक वर्णन सुन्दर है। जौनपुर की समृद्धि का एक उत्कट वर्णन है और वेश्याओं एवं वनितियों के वर्णन में विद्यापति की रसिकता टपकी पड़ती है। मुसल्मानों के अत्याचार का भी, दबी जबान में थोड़ा सा, एक कर्मठ ब्राह्मण का अनुभूत सा चित्र है। सेना के प्रयाण और संग्राम के चित्र भी अच्छे खिंचे हैं। परन्तु इन चित्रों में कहीं भी वह प्रौढ़ प्रतिभा, जो विद्यापति के पदों में मिलती है, नहीं दिखाई देती। उसकी अविकसित अवस्था की झलक मात्र है। कवित्व के हिसाब से कीर्तिलता का ऊँचा स्थान नहीं है। यह केवल इसलिये कि कवि का यह प्रथम प्रयास है।

कीर्तिलता के कथापुरुष

कीर्तिलता के कथानायक कीर्तिसिंह सुगाँव कुल के राजाओं के वंश के थे। इस वंश के आदिपुरुष कामेश्वर थे, इनको दिल्ली के शाहंशाह गयासुद्दीन तुगलक ने मिथिला का राज्य दिया था। कामेश्वर के उपरान्त इनके पुत्र भोगीश्वर राजा हुए। कहते हैं कि बादशाह फिरोजशाह तुगलक भोगीश्वर से बहुत प्रसन्न थे और इनके लिये कामेश्वर को राज्यासन से हटाकर इनको राजा बनाया था। भोगीश्वर के अनन्तर गणेश्वर राजा हुए। गणेश्वर ने बहुत अच्छी तरह राज्य का शासन किया। असलाम मलिक नाम के किसी मुसलमान सरदार ने गणेश्वर का वध कर दिया। इस पर कीर्तिसिंह और वीरसिंह दोनों भाई बहुत नाराज हुए, इन्हों ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए जौनपुर के नवाब इब्राहीमशाह से अपील की और उनकी सहायता से असलान को परास्त किया।

कीर्तिसिंह के अनन्तर भवसिंह राजा हुए और भवसिंह के उपरान्त देवसिंह। देवसिंह के उपरान्त राजा शिवसिंह राज्यसन पर बैठे। इनकी और विद्यापति की बड़ी मित्रता थी। शिवसिंह मुसलमानों के साथ लड़ाई में हारकर नेपाल की ओर भाग गए। तब विद्यापति राजबनौली में जाकर रहे परन्तु शिवसिंह के अनन्तर आनेवाले सुगाव के राजाओं से इनका बराबर सम्पर्क रहा और राजा धीरसिंह के समय तक यह ग्रंथ लिखते रहे।

कीर्तिलता की भाषा

कीर्तिलता का महत्त्व है उसकी भाषा के लिये। जैसा ऊपर कह आए हैं, इस ग्रथ का निर्माण विद्यापति ने तब किया था जब वह केवल २० वर्ष के थे। अर्थात् (ल० स० २६१) ई० सन् १३८० के लगभग यह

पुस्तक बनी। उस समय उत्तरीय भारत में आधुनिक आर्यभाषाएँ बोली जाती थीं। संस्कृत और प्राकृत का प्रभुत्व कविता-क्षेत्र से हट रहा था।

विद्यापति से प्रायः पाँच सौ वर्ष पूर्व कर्पूरमञ्जरी के रचयिता[१] को संस्कृत के प्रबन्ध परुष जान पड़ते थे और प्राकृत के सुकुमार; इसलिए उन्होंने कर्पूरमञ्जरी प्राकृत में लिखी। विद्यापति को वही प्राकृत नीरस जान पड़ी और संस्कृत को बहुत लोग पसन्द नहीं करते, इसलिए विद्यापति ने देशी भाषा 'अपभ्रष्ट' में कीर्तिलता बनाई।

अपभ्रंश अथवा अपभ्रष्ट का अर्थ है बिगड़ी हुई, आदर्श से गिरी हुई। काव्यादर्श के रचयिता आचार्य दण्डी ने काव्य में प्रचलित भाषाओं का उल्लेख करते हुए 'अपभ्रंश' का यह लक्षण दिया है:—

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंशतयोदिताः।
शास्त्रेपु संस्कृतादन्यदपभ्रंश इति स्मृतम्॥

इससे यह प्रकट होता है कि आचार्य दण्डी के समय में अपभ्रंश शब्द के दो अर्थ थे—(१) कुछ अनार्य जातियों की बोलियाँ और (२) संस्कृत भाषा के अतिरिक्त और बोलियाँ या भाषाएँ। परन्तु इतना निश्चय होता है कि उक्त आचार्य के समय (छठी शताब्दी ईसवी) में अपभ्रंश का प्रयोग काव्य में होने लगा था। संभवतः इस समय अपभ्रंश जनसाधारण की बोली थी, काव्यभाषा के तौर पर उसका प्रयोग आरम्भ ही हुआ था।

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि अपभ्रंश प्राकृत भाषाओं की अन्तिम अवस्था का नाम था, इसके अनन्तर ही आधुनिक आर्यभाषाओं का प्रसार हुआ। परन्तु कीर्तिलता के पढ़ने से यह विदित होता है कि विद्यापति के समय में आधुनिक

१—परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो।
पुरिसमहिलाणं जेत्तियमिहन्तरं ते त्तियमिमाणम्॥कर्पूर०१-७।

भाषाओं का 'हिन्दी', 'मैथिली' आदि कोई नाम अभी प्रचलित नहीं हुआ था, भाषाएँ अभी अपभ्रंश ही कहलाती थीं। नहीं तो, विद्यापति एक ही वस्तु को 'देसिलवअना' और 'अवहट्ठा' नहीं कहते।

अपभ्रंश का कोई ऐसा लक्षण देना जो सभी भारतीय अपभ्रंशों पर लागू होता हो संभव नहीं है। गुजरात से लेकर उड़ीसा तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल और महाराष्ट्र तक की सभी भाषाएँ एक समय अपभ्रंश कहलाती थीं, परन्तु प्रदेश-प्रदेश के अपभ्रंशों में बहुत भेद था, जैसे शूरसेन देश का अपभ्रंश, गौड़ देश के अपभ्रंश से अथवा नागर अपभ्रंश, व्राचड़ अपभ्रंश से बहुत भिन्न था। अभी तक अपभ्रंश ग्रन्थ भी बहुत उपलब्ध नहीं हैं, ऐसी दशा में जो ग्रन्थ मिलें उनका अध्ययन करना और उस विशेष अपभ्रंश का ज्ञान प्राप्त कर लेना। सम्प्रति पर्याप्त समझना चाहिए।

'कीर्तिलता' के 'अपभ्रंट' को 'मैथिलअपभ्रंश' कहना उचित होगा इसका संक्षेप में यह विवरण है—

लेखनशैली—कीर्तिलता का गद्य संस्कृत गद्य के आदर्श पर अवलम्बित है। बीच बीच में एक आध क्रिया अथवा अव्यय को छोड़ शब्दावली भी प्रायः संस्कृत ही की है। उदाहरण के लिए पृ० १२ और १४ पर का गद्य ले लीजिए। वहाँ लम्बे-लम्बे समास, वहीं विशेषण पर विशेषण की भरमार और केवल एक आध क्रिया। पद्य भाग पर प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव है, कोई-कोई पद्य तो बिल्कुल प्राकृत के ही जान पड़ते हैं, जैसे पृ० ६ पर 'पुरिसत्तणेन पुरिसओ' आदि।

लेखकों की उस समय के लिखने की रीति में 'अ' का उच्चारण सम्भवतः कुछ सानुनासिक होता था कभी-कभी 'ज' और कभी 'अ' लिखते थे। अथवा यह नेपाली हस्तलिपि का प्रभाव हो, मैथिल न हो ... 'स' में कोई भेद नहीं माना जाता था, उच्चारण 'स' था ... 'न' में भेद नहीं था, उच्चारण 'न' था। कहीं-कहीं

ल में भेद नहीं (यथा नहिन, लहिश्च)। शब्द के आदि के उच्चारण 'ज' था, लिखने में कहीं 'य' कहीं 'ज' था। दो महा- र्ण साथ-साथ लिखे जाते थे, जैसे ध्थ, ह्ट, ख्ख, परन्तु उच्चारण इ, क्ख ही थे। ष का उच्चारण 'ख' था। एक ही शब्द कभी स्कृत (तत्सम) रूप में, कभी प्राकृत (अर्धतत्सम) रूप में तो पभ्रंश (तद्भव) रूप में लिखा जाता था। विदेशी शब्दों को तोड़कर देशी उच्चारण-विधि के अनुकूल कर लिया जाता था, स्तान, तकतान, तुरुक (तुरुक), चरख, मतरक, उजीर, इलामे । छन्द की आवश्यकता के लिए भी कवि स्वरों की मात्राओं में कर देते थे (अंबरा, मेव)।

भाषाओं का 'हिन्दी', 'मैथिली' आदि कोई नाम अभी प्रचलित नहीं हुआ था, भाषाएँ अभी अपभ्रंश ही कहलाती थीं। नहीं तो, विद्यापति एक ही वस्तु को 'देसिलवअना' और 'अवहट्ठा' नहीं कहते।

अपभ्रंश का कोई ऐसा लक्षण देना जो सभी भारतीय अपभ्रंशों पर लागू होता हो संभव नहीं है। गुजरात से लेकर उड़ीसा तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल और महाराष्ट्र तक की सभी भाषाएँ एक समय अपभ्रंश कहलाती थीं, परन्तु प्रदेश-प्रदेश के अपभ्रंशों में बहुत भेद था, जैसे सूरसेन देश का अपभ्रंश, गौड़ देश के अपभ्रंश से अथवा नागर अपभ्रंश, व्राचड़ अपभ्रंश से बहुत भिन्न था। अभी तक अपभ्रंश ग्रन्थ भी बहुत उपलब्ध नहीं हैं, ऐसी दशा में जो ग्रन्थ मिलें उनका अध्ययन करना और उस विशेष अपभ्रंश का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही सम्प्रति पर्याप्त समझना चाहिए।

'कीर्तिलता' के 'अपभ्रंश' को 'मैथिलअपभ्रंश' कहना उचित होगा। इसका संक्षेप में यह विवरण है—

लेखनशैली—कीर्तिलता का गद्य संस्कृत गद्य के आदर्श पर अवलम्बित है। बीच बीच में एक आध क्रिया अथवा अव्यय को छोड़कर शब्दावली भी प्रायः संस्कृत ही की है। उदाहरण के लिए पृ० १२ और १४ पर का गद्य ले लीजिए। वहीं लम्बे-लम्बे समास, वहीं विशेषण पर विशेषण की भरमार और केवल एक आध क्रिया। पद्य भाग पर प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव है, कोई-कोई पद्य तो बिल्कुल प्राकृत के ही जान पड़ते हैं, जैसे पृ० ६ पर 'पुरिसत्तणेन पुरिसओ' आदि।

लेखकों की उस समय के लिखने की रीति में 'अ' का उच्चारण सम्भवतः कुछ सानुनासिक होता था कभी-कभी 'ज' और कभी 'अ' लिखते थे। अथवा यह नेपाली हस्तलिपि का प्रभाव हो, मैथिल न हो। 'श' और 'स' में कोई भेद नहीं माना जाता था, उच्चारण 'स' था। इसी प्रकार 'ण' और 'न' में भेद नहीं था, उच्चारण 'न' था। कहीं-कहीं

न और ल में भेद नहीं (यथा नहिन, लहिन) । शब्द के आदि के 'य' का उच्चारण 'ज' था, लिखने में कहीं 'य' कहीं 'ज' था । दो महा-प्राण वर्ण साथ-साथ लिखे जाते थे, जैसे थ्थ, ड्ढ, ख्ख, परन्तु उच्चारण में त्थ, ड्ड, क्ख ही थे । ष का उच्चारण 'ख' था । एक ही शब्द कभी अपने संस्कृत (तत्सम) रूप में, कभी प्राकृत (अर्धतत्सम) रूप में तो कभी अपभ्रंश (तद्भव) रूप में लिखा जाता था । विदेशी शब्दों को तोड़ मरोड़कर देशी उच्चारण-विधि के अनुकूल कर लिया जाता था, जैसे सुरतान, तकतान, तुरुक (तुरुक), चरख, मदरुक, उज्जीर, इलामे आदि । छन्द की आवश्यकता के लिए भी कवि स्वरों की मात्राओं में हेर-फेर कर देते थे (अंबरा, सेच) ।

संज्ञाएँ—अपभ्रंश में संज्ञाएं प्रायः शुद्ध अपने स्वरान्त रूप (यथा अमिय, गुण्डा, गीति, अयारी, हिन्दु) में मिलती हैं और प्रायः सभी विभक्तियों में प्रयोग में आती हैं । कभी-कभी विभक्तिसूचक परसर्ग इनके उपरान्त पाए जाते हैं, परन्तु अधिकतर नहीं । इन शुद्ध रूपों के अतिरिक्त अकारांत संज्ञाओं के दो रूप और हैं—एकारान्त । घरे-घरे, अजने; आंगे-आंगे) और इकारान्त (धुत्तइ, रज्जइ) । एकारान्त रूप प्रायः करण तथा अधिकरण का सूचक होता है और इकारान्त सम्बन्ध का । सभी संज्ञाओं के दो रूप और हैं—एकवचन में हिकारान्त (असंभहि, तेरहुत्तिहि) और बहुवचन में न्हिकारान्त अथवा न्हकारान्त (नागरन्हि, मारन्हि, मत्तिन्ह) यह रूप प्रायः कर्ता, कर्म आदि कारकों के प्रयोग आते हैं । अकारान्त संज्ञा का कभी-कभी उकारान्त और ओकारान्त र भी मिलता है और यह प्रायः कर्ता का सूचना देता है ।

सर्वनाम—सर्वनाम के विभिन्न रूप बहुत मिलते हैं । उदाहरणार्थ नवाचक सर्वनाम के—कोए, कोइ, का, की, को, काहु, केहु, के, न, कमण, कमणे आदि । सम्बन्धसूचक के जासु-जसु-जिसु, जस्स; , जेन्हे, जं, जे, जेन्हे, जन्हि, जेइ, जेहे; पुरुषवाचक के तं, ता, ताहि

ओ, ओहु, ओ, अओ, वाहि, मो, हंस, मझ, भज्झ, मुज्झ, मोर, मेरहु। कहीं-कहीं अर्धतत्सम रूप ही आ गया है यथा इअरो (इतरः)।

परसर्ग—परसर्गों का प्रयोग अपभ्रंश में बहुत कम है। केवल संज्ञा अथवा सर्वनाम का कोई रूप रख दिया जाता है, विरले ही स्थान पर परसर्ग आता है। करण और अपादान के अर्थ में सभो, सत्र, सकास, सम, अधिकरण के अर्थ में माझ, और सम्प्रदान तथा सम्बन्ध के अर्थ में काजि, कों, क, का (का), करो, करेओ, करी, केरा, कह, की, करी और लागि शब्द मिले हैं।

विशेषण—विशेषण प्राय: तद्भव शब्द हैं और इनमें विभक्तसूचक कोई अव्यय नहीं लगता। लिंग-भेद के लिए कहीं-कहीं विकृत रूप दिखाई पड़ता है जैसे हीन-हीनि, बड़-बड़ी, पिअ-पिआरी, गरुवि आदि। परन्तु अधिक नहीं।

क्रिया—क्रिया में भी रूपों का उतना बाहुल्य नहीं है जितना शौरसेनी आदि प्राकृतों में मिलता है। अधिकतर सहायक क्रियाओं के बिना ही मुख्य क्रिया रख दी जाती है और अर्थ का बोध हो जाता है। कहीं-कहीं प्राचीन क्रिया रूप का केवल तद्भव रूप ही उपस्थित है यथा आरम्भओ (आरम्भामि), आवथि (आयाति), कहसि (कथयसि), उप्पन्नउ (उत्पन्न) आआ (आयातः)।

भूतकाल का बोध या तो प्राचीन क्रान्त रूप के तद्भव रूप से होता है अथवा लकारान्त रूप से (आनलि, चलल, जामल, जानलि, पुरिल)। भविष्य का बोध प्राचीन—स्य—के तद्भव रूप (होसइ, पुच्छिहि, उग्गिह, बुज्झिह) से होता है। वर्तमान काल के शतृ प्रत्यय वाले रूप तद्भव रूप में बहुतायत से मिलते हैं और संज्ञाओं के समान एकारान्त भी होते हैं (आवन्त, आवन्ता, आक्रीडन्ते, करन्ता, कहन्ता, कहन्ते, खण्डन्ते)। पूर्वकालिक क्रिया—इकारान्त है यथा आराधि, चूरि, चोरि, देक्खि, दवलि, धाइ।

कभी तो क्रिया या अकारान्त रूप भूतकाल का बोध कराता है और कभी वर्तमान का यथा बाज, जाव (पृ० ८) वर्तमान में और पृ० ३२ पर पसरु भूतकाल में।

भाववाच्य के रूप बहुत कम मिलते हैं, जैसे कहिअजे (१६), किजिअ (१०), करिअउँ (८), दिजिअ (१०), पाविअइ (८), बन्निअउँ (२२), लक्खिअअल (६), लिज्भिइ (१६)।

प्रेरणार्थक के भी बहुत कम रूप मिलते हैं—(४), पठ्ठाइअ (१०), पलठाए (१४), लज्जाइअ (८), सिक्खावइ (१८)।

क्रियाविशेषण—नीचे लिखे क्रिया-विशेषण प्रयोग में देख पड़े हैं—

न, नहि, नहु, अवसओ, णिअइ, बाहर, भीतर, उप्पर (उप्परि, उपर), समिपा, दूर, पाछा, एकथ्थ, पुनु, पास, दुरहुन्ते, दुरहि, एव। जवे, जवै, तवे, कवहु, कहीं, तोउ, तही, से तैसेन, तथ्थ, कतहु, कइसे, जवहीं, जहाँ, अस, अइसनेओ, अइसेओ।

अव्यय—नीचे लिखे अव्यय मिलते हैं—

अरु, अध, अवि अबि थ, यँ, पइ, (पए), कि, इअ, औ, जइ। सम्बोधन के लिए—अरे अरे, अबे वे।

परिणामस्वरूप कीर्तिलता की भाषा आधुनिक मैथिली और मध्यकालीन प्राकृत के बीच की है। तत्सम, तद्भव और देशी तथा विदेशी शब्दों के समावेश के कारण भाषाविज्ञान की दृष्टि से एक बहुत रोचक सामग्री मिलती है जिसका अध्ययन स्वतन्त्र ही एक मुख्य विषय है।

विश्वविद्यालय }
प्रयाग }

बाबूराम सक्सेना

संशोधित संस्करण

प्रस्तुत संस्करण मे मूलपाठ और अनुवाद की कुछ अशुद्धियाँ दूर कर दी गई हैं और भाषा सम्बन्धी एक लेख जो सम्पादन ने "लिंग्विस्टिक सोसाइटी अव् इंडिया" ग्रियर्सन स्मारक अक मे प्रकाशित किया था, उसका हिन्दी रूपान्तर में आगे दिया जा रहा है।

२०-२-५२ बाबूराम सक्सेना

कीर्तिलता की भाषा

डा० बाबूराम सक्सेना डी० लिट्०

१. मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति की कीर्तिलता उनकी प्रारंभिक रचनाओ में से है। यह प्रायः १३३० ई० के लगभग लिखी गई होगी। लेखक ने अपनी कविता की भाषा को 'अवहट्ठ' कहा है।

यह अवहट्ठ भाषा १४ वीं शती के अपभ्रंश की प्रतिनिधि है। साथ ही साथ विद्यापीठ अपनी भाषा को 'देसिल बयना' भी कहते हैं। इससे यह ज्ञात पड़ता है कि वह भाषा उनके समय की है—विशेषत. सुशिक्षित जन-समाज की। शब्द-समूह मे तीनो प्रकार के शब्द हैं— तत्सम, तद्भव, और देशी। सबसे अधिक प्रयोग तत्सम शब्दो का हुआ है। भूमिका मे आरभिक छद और प्रत्येक अध्याय के अंतिम छद पूर्णतः सस्कृत मे है। गद्य में लेखक प्रायः विशुद्ध शिष्ट (elassical) शैली का सहारा लेता है। उदाहरणार्थ—

पृष्ठ १२ अथ गद्य···पवित्र · देव

पृष्ठ १४ प्रबल शत्रु······जयलक्ष्मी

पृष्ठ १८ हृदय गिरि कंदरा निद्राग्रा पितृवैरि केशरी
पृष्ठ २० विस्मृतस्वामिशोक (हु) कुटिलराजनीतिचतुर (हु)
पृष्ठ ३६ मान्यजनक (क) लज्जावलंबित मुखचंद्रिका कुटिल कटाक्षछटा कंदर्पशरश्रेणी

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत समुदाय की भाषा सदैव उपस्थित साहित्यिक भाषा से शब्द ग्रहण करती है, जैसे संस्कृत से साहित्य हिंदी और फारसी से साहित्यिक उर्दू। मिथिला के पंडित सदैव कट्टरपंथी रहे हैं और उनका संस्कृत से संपर्क बराबर रहा है, इसीलिए वे बड़ी आसानी से स्थान-स्थान पर जननी-भाषा से उधार ग्रहण कर सके हैं। आज भी पंडितों की मैथिली और अपढ़ ग्राम-वासी की मैथिली में बहुत हद तक अंतर है।

तद्भव शब्दों के रूप विभिन्न प्रकार के हैं, एक ही शब्द कई अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे, ब्राह्मणः ब्राह्मण पृष्ठ ३२, बाँभन पृष्ठ ४४। इसका कारण यह जान पड़ता है कि एक ही शब्द संस्कृत से कई बार लिया गया होगा।

देशी शब्दों की संख्या बहुत कम है। 'चल्लि' प्रारंभिक प्राकृत में मिलता है (जैसे, 'कर्पूरमंजरी' में); इस पोथी में मुझे 'धाराड' पृष्ठ ६० और 'ठण्ड' पृष्ठ ६० में मिले हैं।

२. इसके अतिरिक्त उक्त पाठ में बहुत से फारसी और अरबी के उधार लिए हुए शब्द हैं। इस कविता में जौनपुर (आधुनिक जौनपुर)-मुस्लिम सभ्यता के एक केन्द्र का विस्तृत वर्णन है। सूची इस प्रकार है-

सुरतान (पृष्ठ १०), (सुरुतान पृष्ठ ४४), पातिसाह, (पृष्ठ १४, २२) तुरुक्कु (तुरुक्क पृष्ठ ३८,३८), तुरुक (पृष्ठ ४०,४४), तुलुक,(पृष्ठ ६६,७०) तुरुकिनि, (पृष्ठ४२) साह,(पृ. ३६),कम्मान, (पृ. ३८) (कमान, पृ. ६०) मैआल, पृष्ठ ४०, मीर पृष्ठ ४० वेह्लिय पृष्ठ४०, सैहार, पृष्ठ ४०, सराय

पृष्ठ ४० खाणा पृष्ठ ४०, मुकदमा पृष्ठ ४२, मतरुक पृष्ठ ४२, चरख, पृष्ठ ४२, सश्रद पृष्ठ ४२, विलह पृष्ठ ४२, दरवेस पृ० ४२, मखड्डम पृष्ठ ४२, ८०, हुकुम पृष्ठ ४२, बाग पृ० ४२, मिसिमिल पृष्ठ ४२, ६०, निमाज पृष्ठ ४४, मसीद पृष्ठ ४०, ४४, गालिम पृष्ठ ४६, दरबार पृष्ठ ४६, (दरवान पृष्ठ ५०), महल पृष्ठ ४६, दरिगाह पृष्ठ ५०, निमाजगाह पृष्ठ ५०, खोरागह पृष्ठ ५०, खोरमगह पृ० ५०, दवाल पृ० ५०, दार्खील पृ० ५२, उज्जीरपृष्ठ ५६, खोदाइम्न पृष्ठ ५८, पापोम पृष्ठ ५८, फरमान पृष्ठ ५८, सेर पृ० ५८ देमान पृ० ६२, गद्दवर पृष्ठ ६२, कुरबक पृ० ६२, श्रदत्र पृ०६२, तकत पृ० ६८, (तकतान पृष्ठ ६४), तम्बल पृ० ६६, मलिफ पृष्ठ ११० (मखिफ पृष्ठ ८०) राह पृ० ८०, बखत पृष्ठ ८०, दनेज पृष्ठ ८०, थेग्र पृष्ठ ८२, निशान पृष्ठ ८४, तजान पृष्ठ ८४, बाग पृष्ठ ८४, चाबुक पृ० ८८, तरकस पृष्ठ ८८, फउद पृ० ८८, मगोल पृष्ठ ६०, खुदकार पृष्ठ ६०, बगल पृ० ६०, बद पृ० ६०, सिकार पृष्ठ ६८, ,महमद पृ० १००, धरम पृ० १०२, गदा पृष्ठ ३८, बदा पृष्ठ ३८, कूज पृष्ठ ३८, ४२, तवेला पृष्ठ ३८, दोकाणदारा पृष्ठ ३८, खिसा पृष्ठ ३८, मोजा पृष्ठ ४०, खोजा पृष्ठ ४०, ४२, कलीमा पृष्ठ ४२, कसीदा पृष्ठ ४०, फितेका पृष्ठ ४०, कबाश्रा पृष्ठ ४०, पैदा पृ० ४०, ४८ नेवाला पृष्ठ ४२, काश्रा पृष्ठ ४२, बादि पृष्ठ ३८, रइश्रति पृष्ठ ६८, बजारी पृष्ठ ३८, फर्राची पृष्ठ ४०, बाजू पृष्ठ ३८, पेश्राजू पृष्ठ ३८ (पिश्राजु पृष्ठ ४२), सराफे पृष्ठ ३८, कलामे पृष्ठ ४०, खोदाह पृष्ठ ४०, गुलामो पृष्ठ ३८ (गुलामा पृ० ६६,) सलामो पृष्ठ ३८, तोखारही पृष्ठ ५०, रोजा पृष्ठ ४२, मुलुका पृष्ठ ४६, उमार पृष्ठ ४६ (उँमारा), कादी पृष्ठ ८०, मेयाणे पृष्ठ ५०, हउद्दे पृष्ठ ६८, हजारी पृष्ठ ३८, खास पृष्ठ ५०, खराब पृष्ठ ४०, सदर पृष्ठ ५०, तेजी ताजि पृष्ठ ८४, ८८, खरीदे पृष्ठ ३८, अवे वे पृष्ठ ३८।

इन शब्दो मे प्रत्यय संस्कृत की भाँति लगे हैं। उन विदेशी ध्वनियो के लिए, जो प्रस्तुत भाषा मे नहीं है, निकटतम ध्वनियों का

प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूप भी हैं जिसका कारण शुद्ध उच्चारण की अनिश्चितता माना जा सकता है।

३—ध्वनियों का अलग से विवेचन आवश्यक नहीं है क्योंकि इस पाठ में भारतीय आर्य ध्वनियों का विकास नियमित हुआ है। फिर भी निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(अ) स्वर—ये चरण के अंत में प्रायः दीर्घ कर दिए जाते हैं जिससे कि छंद और तुक की सुविधा रहे, और कभी-कभी ये मध्य में भी दीर्घ कर दिए जाते हैं (जैसे, क़ूर पृ० ७६)। परंतु बहुत से स्थानों में दीर्घत्व का यह कारण नहीं माना जा सकता (दीग्गांतर पृ० ७०, मिलाओ दिग्गांतर पृ० ६४, अंतारिक्ख पृ० ११०, मिलाओ थीर पृ० ६२, मिलाओ थिर पृ० ११०। एक स्थान पर तो तुक के लिए स्वर का गुण भी परिवर्तित कर दिया गया है (ई, ओ हो जाता है—नीर के लिए नोर जिससे बोह, से तुक मिल सके, पृ० २२)। कुमर में पृ० २४ और राज में पृ० ५४ स्वरों के ह्रस्वीकरण (कुमार और राजा) का कोई कारण नहीं दिया जा सकता। ऐ और औ कहीं-कहीं संयुक्त स्वर की भांति लिखे गए हैं, परंतु वस्तुतः मूल स्वर अॅ-ई अॅई हैं।

(ब) आदि में आनेवाले 'य' का उच्चारण 'ज' होता था जैसा कि उन दो स्थलों से स्पष्ट है, जहां 'ज' का होना आवश्यक था (यज्ञावजौ पृ० ४, जुज्झायी, पृ० ६० मिलाओ, जुज्झ पृ० ८४)। यॅ (श्रुति के स्थान पर) अवशिष्ट रह जाता है जैसा कि उन स्थलों से स्पष्ट है जहां ए इसका स्थान (सकल > सएल पृ० ५०, नगर > नयर पृ० १६, मिलाओ नअर पृ० २६) ले लेता है; और उच्चारण में मध्य य तथा ए का स्वतन्त्र स्थान न था। बहुत से शब्दों में र और ल एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं (घोला पृ० २४, २०, घोरा पृ० ४४ मिलाओ घोड़ा पृ० ६८, सम्मल पृ० २४, सम्बर पृ० ७०; वैसे ल का

प्रयोग ही अधिक हुआ है : पलइ, पलि पृ० ६६ (मिलाओ हिंदी पड़, अवधी पर), जोलि; (मिलाओ अवधी जोरि) पृ० ८८, पकलि पृ० १०० (मिलाओ अवधि पकरि), दवलि पृ० ४६ (अवधि दौरि)। पाठ में व का बाहुल्य है, पर बहुत से स्थानों में इसका प्रयोग ब के स्थान पर हुआ है (जैसे बम्हण पृ० ३२)।

(स) अनुनासिका—ण और न में कोई अंतर नहीं दिखाई देता, ण दूसरा उचरित अनुनासिक था (मुअण पृ० ४, मुअन पृ० ३२)। प्राचीन ण्ण का उच्चारण ण्ड के समान होता था, जैसे, आकण्डन पृ० ६, पुण्डु ८, सेण्डु पृ० ६४। नं आदि में यँ का प्रतिनिधित्व करता है और मध्य में अनुनासिक मात्र का (नैंतोणा पृ० ३६, फसनो पृ० ८)

न ल का प्रतिनिधित्व करता है मणिक पृ० ८० में और नहिअ पृ० ४८ में, और ल म का प्रतिनिनित्व करता है लसूना पृ० ३८ में और इलामे पृ० ४८ में। म का प्रतिनिधित्व प्रायः व > ब करता है, परंतु इसके विपरित अवस्था अपमान पृ० ३४ (अपावँन से > अपावन) में पाई जाती है। सम्हार पृ० २८ (∠सम्भार : सँभार) में म कदाचित् अनुनासिक मात्र का प्रतिनिधित्व करता है। चाद पृ० ३४, राँक पृ० ५०, चदन पृ० ६८ और ऑग पृ० ६८ (मिलाओ आग) में अनुनासिक बहुत क्षीण था और अनुनासिकता की ओर आ रहा था। पाठ में अनुनासिकता का बाहुल्य है और बहुत से स्थानों में इसका कोई निश्चित कारण नहीं है, जैसे, पॉउ, पीनँ पृ० ४६, उँवाए पृ० १०, उँमारा पृ० ६० काजेँ पृ० ६८, तुरुकूँ पृ० ३८, जनिनँ पृ० ५२, बिस्मिनाँ पृ० ५२।

(द) ऊष्म—बहुत से स्थानों में श का प्रयोग हुआ है परन्तु इसका उच्चारण ख था जैसा निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है—खाण पृ० ४०, षा(खा)ण पृ० ४६, मुष पृ० ५६, षणे, पृ० ६८) इसका उच्चारण कदाचित् स (या स ?) होता था जब कि पार्श्व में कोई कण्ठ्य व्यंजन

होता था जैसे, अहिसेन प० ११२ (मिलाओ खष्टी का आधुनिक उच्चारण षष्टी। नियमित ऊष्म स था)।

(इ) महाप्राणत्व—नकत पृ ४२ (∠नक्षत्र, आधुनिक नखत) में महाप्राणत्व का अभाव और विपथ पृ ७२ (∠विपत्ति) और पच्छूस पृ ५६ (∠प्रत्यूष) में इसकी उपस्थिति का कारण बताना सहज नहीं है। कहीं-कहीं लिपि-प्रणाली में एक महाप्राण व्यंजन को दुबारा महाप्राणित किया गया है (जैसे उथ्थि पृ ५०), परंतु यह महाप्राणित और अल्पप्राणित रूप के मिश्रण का प्रतिनिधित्व करता है। ह व्यंजन बहुत से स्थानों में व्याकरण के रूपों में आ जाता है, जिसका कारण बताना कठिन है, जैसे क्रिया—रूपों के भूत काल में।

(क) अघोष—ठक पृ० १६ (आधुनिक ठग, सं० स्थग) में ध्वनि के अभाव को आसानी से नहीं समझा जा सकता। च का उच्चारण अनिश्चित-सा जान पड़ता है (चढावद पृ० ४४, चढि पृ० १००, चहिं पृ० ६८)

(ग) निम्न प्रकार की संधियाँ पाई जाती हैं, किकरिअउँ पृ० ७० किकरिआ। पृ० ८०, आएवज० पृ० ३०, जअमिअ पृ० १०।

आगे आने वाले पृष्ठों में भाषा का विस्तृत व्याकरण दिया जाता है।

संज्ञा—

४—शब्दांत—अ,-आ,-इ,-ई,-उ और ऊ-में होता है।

सबसे अधिक शब्दांत-अ में होता है; ऐसे शब्दों की संख्या लगभग १७०० है। (लगभग १४०० प्रत्यय-रहित तथा लगभग ३०० प्रत्यय सहित)।—आ अंत वाले शब्द २२५ हैं,-इ अंत वाले शब्द १५५,-ई अंत वाले शब्द ८०,-उ अंतवाले शब्द ४५ और-ऊ अंत वाले ७।

(अ)—अ अंत वाले शब्द या तो प्राचीन-अ शब्दांतों (base) का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे-हिअ पृ० ६, सं० हृदय, सुअण पृ० ४०

सुजन, चइल्ल पृ० ४ प्राकृत चइल्ल) या प्राचीन-आ शब्दातो का (जैसे-लाज पृ० ६२, सं० लज्जा, सेव पृ० ८: सं० सेवा) या फारसी अरबी के उधार शब्द हैं (जैसे—कम्माण पृ० ३८: फा० कमान, निमाज पृ० ४४: अर० नमाज)। यह निश्चित है कि अत में आने वाला-अ (व्यंजनों के बाद का उच्चारण नहीं होता था, यहाँ इसकी उपस्थिति का कारण यह है कि लेखन-प्रणाली में व्यजन तथा-अ, और केवल अत में आने वाले व्यजन का अलग-अलग रूप न था।

(आ)—आ शब्दात (bases) या तो प्राचीन—आ शब्दात हैं (जैसे—वेसा पृ० ३४. सं० वेश्या, रजा पृ० २४. स० राजा) या प्राचीन अ शब्दातों के दीर्घकृत रूप हैं (जैसे—वअना पृ० ६: स० वचन, वल्लहा पृ० ३६: सं० वल्लभ, बोला पृ० ६४: प्रा० बोल), या-आ,-अह और व्यजन अंत वाले फारसी के उधार-शब्द हैं (जैसे—द्वाआ पृ०४२, उँ मारा पृ० ६०: उमरा; कूजा पृ० ३८: कूजह, खोजा पृ० ४२ ख्वाजह, कितेवा पृ० ४०: किताब; तुरुका पृ० ४४. तुर्क)। लगभग २२५-आ शब्दातो (bases) में से ८० प्राचीन-आ शब्दात हैं तथा १६ फारसी के उधार शब्द हैं। शेष-अ शब्दातो के दीर्घकृत रूप हैं। इनमे से कुछ के लघु रूप भी हैं, जैसे—घोला पृ० ५२ तथा घोल पृ० २४।

(ई)-ई शब्दात या तो प्राचीन-इ,-ई,-इन शब्दातो का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे—सत्ति पृ० ६. शक्ति, विज्जावइ पृ० ४' विद्यापति, मेहनि पृ० १२: मेदिनी, हाथि पृ० ३०: हस्तिन्) या-ई अथवा व्यजन वाले फारसी शब्दात हैं (जैसे—वादि पृ० ३८: वादी, रइअति पृ० ६८। र'यत)। इसके अतिरिक्त जइ पृ० ४८ सं० जय का प्रतिनिधित्व करती है, गाइ पृ० ४४ सं० गो का प्रतिनिधित्व करती है, उपर्युक्त ६ सज्ञाओं के अतिरिक्त-इ वाले सभी शब्दात (bases) संस्कृत-इ,-ई और-इन् संज्ञाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ई)-ई शब्दांत प्राचीन -ई का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे—लच्छी पृ० २६, मेइनी पृ० १०६), -इ का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे—पाती पृष्ठ २४ : पंक्ति, भूमी पृष्ठ ६६ : भूमि 7 प्रा० भूमी, -इका का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे—कहानी पृष्ठ ८ : कथानिका, पिआरि पृष्ठ २० : प्रियकारिका) तथा -इन का प्रतिनिधित्व करते हैं (मंती पृष्ठ २० : मंत्रिन्)। अतः कुछ संज्ञाओं के लघु और दीर्घ दोनों ही रूप हमें मिलते हैं जैसे-मंति,मंती,मेइनि:मेइनी। इसके अतिरिक्त फ़ारसी के कुछ उधार-शब्द भी हमें मिलते हैं, जैसे—करिंबि पृष्ठ ४०) गरबि, बादि पृष्ठ ६८, बादी पृष्ठ ८० ; काज़ी; तुरुकिनी उधार-शब्द का स्त्रीलिंग रूप है।

(उ) -उ शब्दांत प्राचीन -उ का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे सत्तु पृष्ठ ८; शत्रु। रिउँ पृष्ठ १२ : रिपुपृष्ठ, पहु ५६ : प्रभु)। भाहु पृष्ठ ११२ में हमें -ऊ शब्दांत का प्रतिनिधित्व मिलता है (भ्रातृवधू) तथा गोरु पृष्ठ ६० में -उ -ऊँप 7 -ऊअ 7 -उ का प्रतिनिधित्व करता है।

(ऊ) -ऊ शब्दांत -उ शब्दांतों के दीर्घकृत रूप मात्र हैं, पसू पृ० ६, हीन्दू पृ० ४२ ∠ सिंधु 'हिंदु' (फारसीकरण के कारण महाप्राण का लोप), सत्तू पृष्ठ १०४। एक फ़ारसी का उधार-शब्द है बाजू पृष्ठ ३८ : बाज़ू।

(ए) एक संज्ञा सुअवइ पृष्ठ ८ में -अइ मिलता है परंतु वह केवल -अँ इँ के बराबर है। एक संज्ञा मातृ पृ० १८ विशुद्ध संस्कृत है। कुछ संज्ञाएँ -ए में मिलती है परंतु उनमें -ए ध्वनि संस्कृत -य की प्रतिनिधि है (जैसे वए पृ० ४०: व्यय), प्राकृत -अ(य) की प्रतिनिधि है (जैसे—राए पृष्ठ २० : राया, लोए पृ० ४८ : लोक 7 लोय । या एक स्थान पर फारसी -य की प्रतिनिधि है (खोदाए पृ० ४० : खोदाया)।

कारक-प्रत्ययः—

५—पाठ में प्रयुक्त लगभग २२०० संज्ञाओं में से २०० से कुछ अधिक प्रत्यय के साथ हैं। वे इस प्रकार हैं:—

-म, -ऐन, ऐहि (-ऐहीं ', -आना, आमिँ, ह, -हि (-हिँ), -न्हि (-न्ह), -उ, -ओ, -आएनों, -ए (एँ) और -हु।

(अ) -म (रोलम) का केवल एक उदाहरण पाया जाता है और यह प्राकृत-प्रभाव Prakritism है। (आ) -ऐन पृ० १०६, के भी चार उदाहरण हैं (पुरिसत्तणेन, जन्म-मत्तेन, और जलदानेन -ये एक ही छद मे हैं पृ० ६, और गमनेन पृ० ६४)। (इ) चार -ऐहि के उदाहरण मिलते हैं (खग्गेहीं पृ० १०४, परकमेहि पृ० ८४, चामरेहि पृ० ८४, पक्खरेहि पृ० ८४)। (ई) -आना का केवल एक उदाहरण मिलता है (नामाना पृ० १०४) और वह बहुवचन कर्म के रूप में है। क्या यह प्राचीन बहुवचन कर्त्ताकारक के पुलिंग शब्दांत -अन का प्रतिनिधित्व करता है ? (उ) कटकानीं पृ० ७६, ६४ दो बार पाया जाता है, तथा -आनि प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता है। यह जानना रोचक होगा कि -न -यहाँ -नँ के रूप में है, जो केवल अनुनासिकता है, जब कि यह तरकानने में पूर्णतः सुरक्षित है। (ऐ) -ह प्रत्यय के ११ उदाहरण हैं जो सब -अ शब्दांत (bases) मे हैं (जैसे—जुज्झह पृष्ठ ११०, धुत्तह पृष्ठ ३४, राअह पृ० २२)। एक बार -ह को -हा मे दीर्घ कर दिया गया है (देवहा पृ० ४)। यह -ह संस्कृत के -स्य -स्स स का प्रतिनिधित्व करता है। ग्यारहों उदाहरणों में इसका सम्बन्धवाचक भाव है।

(ए) -हि (-हिँ) के ४४ उदाहरण हैं। इनमे से २६ का अधिकरणवाची भाव है (जैसे—कीं समारहि सार पृ० ६, तहि दोआरहि पाइया पृ० ४८), ६ का कर्मवाची (जैसे—शत्रुहि मित्र कए पृ० १८) ७ का करणवाची (जैसे—पए भारहीं पृ० ६०), और २ का सम्बन्धवाची (जैसे, रायघरहि का पच्छ खेत पृ० १०२, वैरयहि करी मुख पृ० ३४)। केवल अंतिम दो उदाहरणों को छोड़कर यह सदैव परसर्गों के बिना मिलता है। उपर्युक्त उदाहरणों में एक को छोड़कर इसका प्रयोग एक

वचन में हुआ है। मैं इसे संस्कृत के -स्मिन् प्रत्यय से संबंधित करना चाहूँगा। कारक के अधिकरणवाची प्रयोगों का आधिक्य इसकी पुष्टि करता है। इस कारक के विकृत रूप में प्रयुक्त होने का प्रारंभ हमें यहीं मिलता है। बाद के एक अवधी ग्रंथ (तुलसीदास : रामायण) में इस कारक का प्रयोग विकृत रूप में ही हुआ है।

इस कारक के ४४ उदाहरणों में से, २ -उ संज्ञाओं के हैं, ३ -आ संज्ञाओं के और शेष -अ संज्ञाओं के हैं।

(ऐ) -न्हि के १३ उदाहरण मिलते हैं (१२ -अ संज्ञाओं के उपरांत और १ -आ संज्ञा के उपरांत) तथा -न्ह का एक। इनमें से ११का संबंधवाची भाव है—जिनमें से ६ परसर्गों के साथ हैं और २ बिना परसर्गों के हैं (जैसे—महाजन्हि करो बोलंता पृ० १८, अरिराअन्ह लच्छिअ छोलि ले पृ० ८६), १ का कर्मवाची (गो बोलि गमारन्हि छाड पृ० ३६) तथा २ का करणवाची (तब्बे मन्तिन्ह किअउ पथ्याव पृ० ५६, महराजन्हि मल्लिके चप्पिलिऊ)। यह कारक प्राचीन संबंधवाचक पर आधारित हैं, -हि का जोड़ा जाना संभवतः एकवचन के सादृश्य पर है जिससे कि कारक को एक भिन्न रूप दिया जा सके।

(ओ) -उ प्रत्यय के १२ उदाहरण हैं, ११-अ संज्ञाओं के बाद तथा १ -आ संज्ञा के बाद (कलाउ पृ० ४)। -अ शब्दांत के बाद वाले ११ उदाहरणों में तीन को छोड़कर सभी का भाव कर्तृवाची या कर्मवाची है (जैसे—तनहु पिआसु पिआसु पइ पृ० ४२, जसु पत्थावे पुरुहु पृ० ८)। उन तीन उदाहरणों में जहाँ -उ प्रत्यय संबंधवाची भाव व्यक्त करता है (मुहु मीतर पृ० ४२, सेण्डुसंख पृ० ६४, महामासु खंडो पृ० १०६), इसका प्रयोग समास-स्थित -अ शब्दांत की भाँति हुआ है। यह स्मरणीय है कि सेण्डु और राउ, दो कारकों में -उ प्रत्यय-आशब्दांत के ह्रस्वीकृत -अ शब्दांत के उपरांत आया है, सेना > सेन > सेन >

सेण्ड : सेण्डु, राजा > राम्रा > राम्र : राउ। इन शब्दो (सेन्न आदि राम्र) के रूप इसी पाठ से प्रमाणित हैं। यह -उ प्रत्यय प्राचीन -ओ -अह, कर्ताकारक एकवचन है।

सूचना—इन ग्यारहो मे -उ अत्य-अ के स्थान पर आता है (मासु' 'मासउ' नहीं)।

(ओ) -ओ प्रत्यय के ३३ उदाहरण हैं। इनमें से ६ अंत्य -अ के बाद जोडे गए हैं और २४ उसके स्थानपर रखे गये हैं। यह प्राचीन कर्त्ताकारक एकवचन प्रत्यय है जो साधारण या दीर्घकृत (-क) शब्दात के उपरात आता है। -जो कभी ह्रस्व होता है और कभी दीर्घ भाव सब स्थानो में कर्तृवाचक या कर्मवाचक होता है। (जैसे—जहा जाइअ जेहे जानो, भोगाइ रजा का बढ़ि नाना) केवल निम्न उदाहरणों को छोड़कर।

महाउओ का ओंकुस पृ० ८२, दिगातर राम्रा सेवो आम्रा पृ० ६४, पाओ पहारे पुहुवि कम्प पृ० १०२

चलिम्र तकतान मुरतान इब्रहिमओ पृष्ठ ६४

इन उदाहरणों में -ओ प्रत्यय की कर्तृवाचक और कर्मवाचक भाव संबधी शक्ति समाप्त हो गई है, और इसका प्रयोग साधारण शब्दात की भाति हुआ है। 'हमे पाच उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जहाँ इस प्रत्यय के साथ संज्ञा का प्रयोग बहुवचन में हुआ है (कुमारो पृ० ३८, कुमारो पृष्ठ ८०। द्वारओ पृष्ठ ४२, गुलामो पृष्ठ ३८, सलामो पृष्ठ ३८)।

(अं) एक उदाहरण (तरुकाणनो पृष्ठ ३८) आणनो प्रत्यय का मिलता है (संस्कृत के प्राचीन -आनाम् पर आधारित)।

(अः) -ए (-एँ) प्रत्यय वाले १६१ उदाहरणों में से १५० ए प्रत्यय-संयुक्त हैं और ३१ एँ प्रत्यय-संयुक्त हैं। इनमें से १-इ शब्दात के पश्चात् है (पूहविए पृष्ठ ४६) और इस स्थान पर स्त्री-शब्दातो के बाद आने वाले प्राकृत के विकृत प्रत्यय-एँ का प्रतिनिधि है। तीन

-अ शब्दांत के पश्चात् हैं (तुलनार्जें पृ० १४, मजाजें पृष्ठ १०६, विधातार्जें—इनमें से प्रथम दो विकृत -ए (प्रा० स्त्री) हैं, और एक -अ शब्दांत के आधार पर करणवाची हैं। शेष -अ शब्दांत के साथ हैं। सर्वाधिक संख्या एक करणवाची भाव व्यक्त करती है (६५ -ए और २७-एँ) जैसे—रूजें पृ० ४८, पश्च भरे पृ० ४६, भरें पृष्ठ ८६। इसके बाद अधिकरणवादी है (४१ -ए और ४ -एँ) जैसे—मग्गे पृष्ठ १०४, मेआंणे पृ० ५०, माथे पृष्ठ ६८। ३० कर्तृवाची हैं (२७ -ए, ४ -एँ), १३ कर्मवाची (१० -ए, ३ -एँ) और ६ (-ए) संबंधवाची हैं (जैसे प्रत्यय चिन्हे पृ० ६४)। कर्तृवाची में से ७ (जैसे—राआ पुत्ते मंडिया पृ० ४८, काचले काचलें नयने पृ० ८६, फौदे पृष्ठ ६६) और कर्मवाची में से २ (जैसे—महल मजेदे जनत्ता पृ० ४६, नाहिअइलामे पृष्ठ ४८) बहुवचन का भाव व्यक्त करते हैं। कर्तृवाची और कर्मवाची में से २४ -ए प्रत्यय -य मात्र हैं—मध्यवर्ती व्यंजन का प्रतिनिधित्व करते हुए, जो समाप्त हो चुका है अथवा संस्कृत या प्राकृत -य का प्रतिनिधित्व करते हुए (देखो ३)।

करणवाची प्रत्यय निश्चित रूप से प्राचीन -एन है (-एण और प्राचीन अधिकरणवाची -ए) कर्त्ताकारक, कर्मकारक और संबंधकारक एकवचन में संभवतः मागधी कर्त्ताकारक एकवचन -ए है। बहुवचन में कर्तृवाची -ए के कुछ अंश अवशिष्ट जान पड़ते हैं जो कर्त्ताकारक में भी हैं।

सूचना:—तीन शब्दों (रखि पृष्ठ ६४, लोइ पृ० ७४, कमत्तवइ पृष्ठ २०) में -ए प्रत्यय -इ प्रत्यय के रूप में दिखाई पड़ता है, जो नियमित रूप से -ए से बदल जाता है।

(अउ) पृष्ठ २० पर ३ उदाहरण संबोधन के मिलते हैं जो -हु के साथ हैं (लोगहु, -शोकहु, -चतुरहु)। इसका संबंध हो से जोड़ा जा सकता है जो बुलाये जाने वाले नाम के साथ संयुक्त होता था।

सूचना—व्यक्तियों को पुकारने के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग पाया गया है:—

अरे अरे पृष्ठ २०, अहह पृष्ठ ७०, अहो अहा पृष्ठ ५०, अवे वे पृष्ठ ४० ।

विशेषण

इस पाठ में हमें लगभग ४०० विशेषण मिलते हैं। इनमें कुछ का प्रयोग संज्ञा की भाँति हुआ है, स्वयं संज्ञा जहाँ छिपी हुई है, जैसे—भुलउ बुड्डउ चेतना पृ० २६। विभाजित होने पर विशेषणों के चार वर्ग बनते हैं:—

गुणवाची १८१
परिमाणवाची २८
संख्यावाची १२८ तथा
पूर्वसंज्ञा ६१

(पूर्वसंज्ञा विशेषणों का विवेचन सर्वनाम के साथ किया जायगा) निश्चित रूप से बहुत से विशेषण संस्कृत विशेषणों पर आधारित हैं, जो तत्सम के रूप में मिलते हैं (जैसे—प्रसंग ५६, मत्त पृष्ठ ४२) अर्द्धतत्सम के रूप में मिलते हैं (जैसे—किरिस > कृश पृष्ठ ७० । निरबल < निर्बल पृष्ठ ७०) या तद्भव के रूप में मिलते हैं (जैसे—तात तप्त पृष्ठ ६०, मुहब्बा मुमध्य पृष्ठ ४८)। कभी-कभी एक ही विशेषण के कई रूप पाए जाते हैं, जैसे—सकल-श्रो पृष्ठ ५०, सअल पृष्ठ ६६, सगर पृष्ठ ६६।

केवल निम्नलिखित विशेषण फारसी उद्गम के हैं—सुरतानी पृष्ठ ६४, गंदा पृष्ठ ३८, खराब पृष्ठ ४०, सदर पृष्ठ ५०; हजार्ज पृष्ठ ३८, तेजि ताजी पृष्ठ ८४।

प्रायः विशेषण लिंग के अनुसार नहीं बदलते, स्त्रीलिंग के केवल निम्नलिखित उदाहरण मिले हैं, रुसलि विभूति पृ० १४, तेतुली वेला पृष्ठ १८, बड्डि मार्नो (स्त्रीलिंग गलत स्थान पर है मार्नो पुल्लिंग है परंतु चूंकि इसका अर्थ ज्योति है, संभवतः इसलिये सम्मिलन (Contamination) के कारण लिंग किचि (ज्योति) के अनुसार हो गया है) दोसरि अमरवतो पृष्ठ २८, औकी हाट करेओ पृष्ठ ३२, बड़ी बड़ी शफरी पृ० ३६, दोखे हिनि, साभ खीनि पृष्ठ ३६, नारि बिअक्खनी पृष्ठ ३८, आड़ि डीठि पृष्ठ ४०, गीति गरुवि पृष्ठ ४२, बड़ि साति पृष्ठ ६८, पुहुवि भए जा छोटि पृ० ६४।

विशेषण कारक के अनुसार भी नहीं बदलते। विकृति कारक के केवल निम्नलिखित परिवर्त्तनों के उदाहरण पाए जाते हैं, बहुले भाँति पृ० ३०, एक खणे पृष्ठ ३०, तरुणे तुरुक वान्धा पृष्ठ ६०, गरुजे दाते पृ० ८८, सगरे राह पृष्ठ ८०, दोसरे माथे पृ० ६८। निम्नलिखित उदाहरण केवल बहुवचन के अनुसार परिवर्तन के द्योतक हैं :—

सबे (राए) पृ० ६०, बाकुले (बक्रने) पृ० ६८, काचले (नम्रने) पृ० ६८, (चिन्हें) भिन्ने भिन्ने पृ० ६४, बड्डेओ पृ० २०, छोटेओ-तुरुका पृष्ठ ४४।

८—निम्नलिखित संख्यावाची विशेष पाठ में आते हैं—

(अ) पूर्ण संख्यावाचक—

१. एक पृ० ६२, यक पृ० ४२, एकओ पृ० ७०

२. वे पृ० ८८, वेवि पृ० ८०, दुहु पृ० ६८, दुअओ पृ० २४

(वे १४ स्थानों में प्रयुक्त हुआ है और दु ६ स्थानों में)

३. तिन्नि पृ० ८, तीनु -हु पृ० १४, तीनू पृ० २०, ३४, तीनु पृ० ३६, तिन पृ० ७४

४. चारि पृ० ८४, चारहु (पाजे) पृ० ८६

५. पंच पृ० १६

७. सात पृ० ५२
८. अट्ठ पृ० ६६, अस्ट पृ० २८
१०. दसश्रो पृ० १०, दस पृ० ६८
२०. वीस पृ० ६०
२८. अट्ठाइसश्रो पृ० ५२
१००, सए पृ० ६०, शत पृ० २८
१०००. सहस पृ० ३६, हजारी पृ० ३८
१,००,००० लख्ख पृ० २८, लख पृ० ६६
१,००,००,०००. कोटि

(श्र) क्रमवाचक—

1st. पहिल पृ० ३६, पटम पृ० १६, प्रथम पृ०
2nd. दोसरे पृ० ६८, दोसरी पृ० २८
5 th. पचम पृ० १०

(इ) श्रपूर्ण सख्यावाची—

१।३ तीय पृ० ३६

(ई) श्रन्य—

कुछ—एक्के पृ० १०४, एक्क पृ० २० किछु पृ० ६२

बहुत से—बहुल पृ० [७०, अनेअ पृ० ८४, अनेको पृ० ३८, बहू पृ० १०६, बहूता पृ० ३८, बहुत पृ० ६२, प्रचुर पृ० २८

सब—सबे पृ० ६०, सव पृ० ५०, सब्ब पृ० १६
अगणित—अरावरत पृ० ८२, अनत पृ० ४०, अखिल पृ० ८६

———

सर्वनाम

६—उत्तम पुरुष—

साधारण कारक (मूल रूप) में एक ही रूप होता है हऊँ, जो पांच स्थानों में मिलता है (पृ० ६, ८, १८, ८०, १००)। यह अहम् पर आधारित है।

विकृत रूप में मो (पृ० ६४) केवल एक बार मिलता है, और मोऊँ भी एक बार (पृ० ४) मिलता है, दोनों का संप्रदानवाची भाव है। संबंध के बहुत से रूप हैं—मम (२२, ११२), मह मस्सो (पृ० ६२, ११०- ११२,), मह मस्स (पृ० ११०), मझ्झ (पृ० ४, ५८), मइझ्झ (पृ० २२), मुझ्झ (पृ० ७०), मुज्झ (पृ० ४, ७२), सब महाम् पर आधारित-और मोर (पृ० २०), मेर-हू (पृ० २०) जिनमें विकृत रूप के साथ-साथ (कर ?) जुड़ा हुआ जान पड़ता है।

अहम् दो बार आता है (पृ० ७२, ७४) और अम्मह एकबार (पृ० ७०) केवल संबंध के रूप में। इनका संबंध प्राकृत अम्हे से जोड़ा जाता है।

१०—मध्यम पुरुष—

मूल रूप में तोमे एक बार आता है (पृ० ११२); तोह एक बार आता है (पृ० ६४), तथा तोहे चार बार आता है (पृ० ५८, ६४, ६४, ६४)। तुम्हें कर्त्ताकारक के रूप में चार बार आता है (पृ० ६०, ६०, ६४, ६४) तथा कर्मकारक के रूप में एक बार (पृ० ६०)।

विकृत रूप में तोहि (पृ० ११२) कर्मकारक के रूप में आता है, तथा तज्झ एक बार संप्रदान के रूप में (पृ० ११२) और दो बार संबंध के रूप में (पृ० ५६, ५८) आता है, तुम्हें संबंध के रूप में दो बार आता है (पृ० ६०) और तुम्ह संबंध के रूप में दो बार

पृ० ५८, ६०)। विकृत रूप तो (पृ० ५८) के परसर्ग के साथ संप्रदान के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

इन रूपों का संबंध प्राकृत के रूपों से जोड़ा जा सकता है।

११—अन्य पुरुष—

अन्य पुरुष के रूप, संकेतवाचक दूरवर्ती तथा नित्यसंबंधी के रूप एक साथ आते हैं। मूल रूप एकवचन के रूप पाठ में निम्न प्रकार से हैं—

(अ) सो जो पाठ में संकेतवाचक के रूप में ६ बार आता है (पृ० ६, ६, ८, २६, ६२, ११२), और नित्यसंबंधी के रूप में दो बार (पृ० ४, १०)

(अ) स (पृ० १२) अन्य पुरुष सर्वनाम की तरह

(इ) सो नित्यसंबंधी के रूप में एक बार (पृ० ११२) और संकेतवाचक के रूप में एक बार (पृ० ११२)।

(ई) ओ सात बार (पृ० ४, ४०, ५०, ६८, ६४, ६४, ६८), और ओ-हु तीन तीन बार (पृ० ५०, ६४, ६४) संकेतवाचक के रूप में आता है।

मूलरूप बहुवचन के दो रूप मिलते हैं ते (पृ० ६६) नित्यसंबंधी के रूप में और ते (पृ० ६५) अन्य पुरुष कर्ता के रूप में।

विकृत रूप के बहुत से प्रकार हैं—तो दो बार आता है (२२, १००) कर्म के रूप में, और एक बार संबंध के रूप में (पृ० ६४), तहि तीन बार आता है (२८, ५०, ५०), और प्रत्येक बार बहुवचन संज्ञाओं के संकेतवाची विशेषण के रूप में मिलता है, एक बार करी (पृ० ८६) में साथ संबंधवाचक एकवचन के रूप में आता है। इसी प्रकार तन्हि (पृ० ३६) बिना परसर्ग के और तन्हि (पृ० ३६, १२) करी, करो के साथ संबंधवाचक बहुवचन के द्योतक है, और तेन्हे (पृ० ७६) तथा तोन्हि (पृ० ६२) बहुवचन संज्ञाओं के साथ संकेत-

वाची विशेषणों की भाँति रहते हैं। तसु (पृ० २६, ३८, ४४, ४, ८, १०, ५०, ७४, ८८, १००, तासु (पृ० १०, १२, ७४, १००, ७६), और तिसु (पृ० ७४) बिना परसर्ग के संबंधवाची हैं। केवल एक बार तसु 'केरा' (पृ० ३२) के साथ आता है।

अओ बिना परसर्ग के (पृ० ६६) औ की के साथ (पृ० ३२), तथा क (पृ० ७२), संबंधवाची का भाव व्यक्त करते हैं।

१२—संबंधवाचक सर्वनाम—

मूल रूप में 'जो' कर्ताकारक एकवचन के रूप में तीन बार आता है (पृ० ४, २०, ८०), तथा जे तीन बार एकवचन में (पृ० १०, १६, ७२) और एक बार बहुवचन में (पृ० ६६) आता है।

विकृत रूप एकवचन में जेन तीन बार पृ० ८ पर आता है। (प्रा० जेण) और जे>जेन तीन बार) पृ० ८, १० ८०), के विशेषण की भाँति दो बार आता है (पृ० ६०, ११२)। कर्त्ता कारक के रूप में जेन्हे आता है (पृ० १०, १२, १४, और ६ बार पृ० ७६ पर, तथा जेन्ने एक बार पृ० १२ पर)। इन सब स्थानों में यह बहुवचन में है। जेइ का एक उदाहरण है (पृ० १०) और जान्हि के दो उदाहरण हैं, एक बार पृ० ३४ पर बिना परसर्ग के, और एक बार 'के' सहित पृ० ३२ पर संबंधवाचक एकवचन में हमें जसु (पृ० ६, ८, ७४, ७६, ७८, ११४), जस्स (पृ० ६), जासु (पृ० ६, ८, ४८, ८४) और जिसु (पृ० ७५) मिलते हैं। जम (पृ० १० पर) अधिकरण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जेहे 'गानों' (पृ० २४) के विशेषण के रूप में, और जेओन (<येमुना) दरबार भेआणे की पृ० ५० पर।

१३—संकेतवाचक निकटवर्ती—

मूल रूप में हमें ई पृ० ४ पर मिलता है, और एहु पृ० ८, १८, ५०, ६६ पर, तथा विकृत रूप में एहि (पृ० १८) और एहि (पृ० ५०) पर।

ई आधुनिक संकेतवाचक है, एहु एहो और एहि, एहीं -हि में कदाचित् विकृत प्रत्यय का द्योतक है।

१४—प्रश्नवाचक—

मूल रूप में हमें 'को' पृ० ८, ६२, ६४, ८७, ६६, ११० पर मिलता है, के प्राणिवाचक के रूप में पृ० ५२, ८८ पर, की पृ० ६, ६८, ६८, ६०, ७०, ७६, ८० पर, का पृ० ४, २८, ३४, ४०, ४२ पर, और काह अप्राणिवाचक के रूप में पृ० ६४ पर, कवन पृ० ८ पर मिलता है, कओणा पृ० ५१ पर, कमना पृ० ६८, ६६, ११२ पर और कमण पृ० २२ पर।

केरा के दो उदाहरण हैं (करण-पृ० ६४, ६८ पर), इनमें से को > कह > के, की का मागधी रूप है, कि 'क् ल् य' का प्रतिनिधि है, का और काह ? कवन इत्यादि क उरा से संबंधित हैं।

१५. अनिश्चयवाचक—

(अ) कोइ (पृ० १६) पर एक बार आता है, और काहु १२ बार (६ बार पृ० २४ पर और एक-एक बार पृ० ३४, ३६ और ४२ पर)। एक बार पृ० २४ पर हमें काहु-ओ मिलता है। अप्राणिवाचक किछु पृ० २०, ३०, ३२, ४२, पर मिलता है और आन से संयुक्त पृ० ४२ पर।

(आ) 'दूसरा' अर्थ वाले सर्वनाम निम्नलिखित हैं:—

आन (आण) > अन्य पृ० १८, ३०, ५८, ६२, ६४ पर, इअर पृ० ६०, इअरो (पृ० ४) इतर, अवर (पृ० ३४) अपर तथा पर पृ० ४८ पर।

१६. निजवाचक—

आत्मन् पर आधारित हमें बहुत से रूप मिलते हैं, जैसे, आप (पृ० ४८, ८०), आपक (पृ० ६०), अप्पा (पृ० १०४), अप्प (पृ० ४), अप्पु (पृ० ३२, ६६), अपन (पृ० २२), अपने

(पृ० ३१) अपनेहु (पृ० ६०) अपनेंओं और अप्पन (पृ० १००)। सब संबंध के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं केवल आपे को छोड़कर जिसका अर्थ है 'अपने द्वारा'। निअ (पृ० ७२, ८८) और निजें (पृ० ८, १८, ६०, ६४, १००)/ निज, तथा निअ (पृ० १२, १०२) का अर्थ है 'अपना'।

१६. Pronominal Abjectives—

निम्नलिखित Pronominal Abjectives, उन के अतिरिक्त जिनका उल्लेख विभिन्न सर्वनामों के अंतर्गत हो चुका है, पाठ में मिलते हैं :—

(अ) तैसना (प्रस्ताव) पृ० ६२ तैसओ (कब्ब) पृ०४, अइस पृ० २८, अइसो (कटक्न्ही) पृ० ६२, अइसेओ (प्रतापे) पृ० ४४, अइसनओ (आस पृ० ३६), ऐसनेओं (उँतलाप) पृ० ६२, अइसे उअओ पृ० ३४, जइसओ (कब्ब) पृ० ४

(आ) ततुला (वेला) पृ० १८, एत्ता (दुम्ख) पृ० ७२, कत पृ० ८८

(इ) एवे (लमवन) पृ० ६, कत (घाँगड़) पृ० ६०, कतहु पृ० २४

इनमें से (अ)—दृश (तादृश इत्यादि) पर आधारित हैं, (आ) और (इ)—वत् पर। न प्रत्यय तैसना, तैसओ में जुड़ा हुआ है; ऐस साधारण रूप हैं।

परसर्ग

१८. इस पाठ में केवल १०० के लगभग परसर्ग मिलते हैं। इनमें से संज्ञा और सर्वनामों के बाद आनेवाले में से संबंधवाची परसर्ग ७३ बार प्रयुक्त हुए हैं, करण और अपादान ११ बार, अधिकरण ६ बार और संप्रदान १ बार। बचे हुए परसर्ग क्रियाविशेषणों के बाद हैं, जैसे तै और कहु।

(अ) संबंधवाची—संप्रदान

क—१७ बार (जैसे पृ० १४ 'शक्ति क परीक्षा') केवल एक बार यह सम्प्रदान के रूप में प्रयुक्त हुआ है (अहिमान क पृ० ५८)

का—३ बार, एक संबंध के रूप में (नागरन्हि का मन गाड़ पृ० ३६) और दो बार संपादन के रूप में (अधम उत्तम का पारक पृ० १६, आन का लाग पृ० ३०)

का—३ बार, (१००, २०२, ९२) सब स्थानों में संबंध के रूप में प्रयुक्त (जैसे-कण्डक का पानी पृ० १००) हुआ।

कं—७ बार सदैव संबंध के रूप में और विकृत रूप की संज्ञा के साथ (जैसे—सुलतान के फरमाने पृ० ८०)

कइ—३ बार, एक बार स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ (आस असवार कइ पृ० ८६) और दो बार पुल्लिंग संज्ञा के साथ (सिर नवइ सब्ब कइ) पृ० ५०, भए सब्ब कइ पृ० ५०)

को—७ बार, सब संबंध (जैसे रस को मन्त्र)

करो—१४ बार, सब संबंध एकवचन संज्ञा के साथ (जैसे—तान्हि करो पुत्र पृ० १२)

करे—२ बार, दोनों बार संबंध विकृत रूप की संज्ञाओं के साथ (कुम्भोद्भव करे निनमातिकमे पेलि पृ० ८२, पद्म करे आकारे पृ० ८६)

करेओ—४ बार (१४, ३०, ३२, ५० जैसे—करेओ दप्प चूरेओ)

करी—७ बार, सब संबंध स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ (जैसे—उच्च करी डिठि पृ० ११२)

केरा—५ बार, सब संबंध (१०, २६, ३२, ७२, १०२ जैसे—ता केरा बड्डिपन पृ० १०)

केरी—१ बार स्त्रीलिंग संज्ञा के साथ (तम् दिश केरी रायघर-तरुणी हट्ट विकाथि पृ० ६०) इनमें से क, का, का, के और कइ 'कृत' के कुछ

रूपों में संबद्ध हैं, तथा करो, करे, करेओ और करी का संबंध उसी प्राकृत कृदंत के दीर्घकृत रूप से थे, तथा केरा और केरी कार्यक से संबद्ध जान पड़ते हैं।

(आ) अधिकरण—

माझ २ (सुवराजन्हि माझ पवित्र पृ० १२, माझ संगाम पृ० १०४)

मजु १ (सेना मजु पृ० ८०)

माहि १ (विथि माहि पृ० ३२)

पा १ (भूमि पा पृ० ८६)

परि १ (कमन परि)

इनमें से माझ और मजु की व्युत्पत्ति मध्य से हुई है और पा ∠ पद्म या पार्श्व, पारि ∠ उपरि

(इ) करण-अपादान—

से २ (दाम से पृ० ८४, तास से पृ० ८४)

सनो ६ (६, २२, ३२, ८२, १०४, जैसे—जीव सनो पृ० २२)

तह १ (याचाहु तह पृ० ३०)

हो १ (रोल हो पृ० ३०)

हुन्ते १ (डर हुन्ते पृ० ४६)

इनमें से सनो ∠ सम या समान, 'समान' 'पव्वत समान' में प्रयुक्त पृ० ८२; और से ∠ सहितेन जब जि तह संभवतः ततहु से हुन्ते अपूर्ण कृदंत √ भू के अधिकरण रूप होन्ते से तथा हो भी √ भू से संबद्ध है।

(ई) संप्रदान—

संबंध के अंतर्गत दिए गए उदाहरणों के अतिरिक्त हमें एक बार 'लागि' लिए के अर्थ में प्रयुक्त मिलता है (तेसरा लागि पृ० ३४)।

क्रिया

१६. पाठ में भूतकाल की और habitual तथा historic

वर्तमान की क्रियाओं का बाहुल्य है, और यह एक वर्णनात्मक कविता है। दूसरी क्रियायें प्रायः प्रत्यक्ष रूप में पाई जाती हैं।

२०. वर्तमान काल--

यह प्रायः पुरुषवाची प्रत्ययों के साथ क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है जो अधिकतर प्राचीन वर्तमान काल पर आधारित हैं। प्रत्यय इस प्रकार हैं--

	ए० व०	ब० व०
उत्तम	—अओँ	
मध्यम	(अ) सि	
	(आ)—अहि	
अन्य	(अ)—अइ (अए)	
	(आ)—अहि	
	(इ)—अथि	
	(ई)—अ	

सूचना—इन प्रत्ययों का आदि अ-लुप्त होता है यदि वे आकारांत धातुओं के बाद आते हैं (जा-जाथि पृ० ३०), ए (देः देइ पृ० ४०) और ओ (होः होइ पृ० १६)

उत्तम पु० ए० व०—उदा० जम्पओं पृ० ६, लावओं पृ० १००, हओ कहओं पृ० ८०। एक उदाहरण ऐसा है (देखओ पृ० १८) जहाँ-अँ-(जो केवल अनुनासिकता का द्योतक है) का अभाव है। यह प्रत्यय आमः पर आधारित है, जो बहुवचन से एकवचन हो जाता है।

म० पु० ए० व०—इसके केवल ३ उदाहरण हैं (अ)—कहसि पृ६, जासि पृ० ११२, और मग्गसि पृ० ११२ तीन उदाहरण हैं (आ) जाहि, पृ० ११२, जाहि-जाहि पृ० ११२, जाहि-जाहि पृ० ११२—सब आज्ञानवाचक भाव

में। दोनों कदाचित् प्राकृत के -सि प्रत्यय हैं (b) स-कान्ह में विकास दिखाते हुए।

अ० पु० ए० व०—सर्वाधिक प्रचलित रूप—अइ (जैसे-बेसाहइ पृ० ३२, पजटइ पृ० २८), लगभग ६ उदाहरण—अए (जैसे-मिलए, पृ० ३८) के हैं, ६ हि के (जैसे धावहि पृ० ६४) और १६ (इ) के (जैसे-आवथि पृ० ३०); एक बार होथ पृ० १०२। कभी-कभी एक ही धातु एक से अधिक रूपों के अंतर्गत मिलती है। (रहइ पृ० ४२, रहहि पृ० ४८ आवहि पृ० ४६, आवइ पृ० ६०)। इन रूपों में से (अ) संस्कृत-अति > प्राकृत अइ से संबंधित है, -अए मात्र अई का भिन्न उच्चारण है। अथि में प्राचीन रूप का शक्तिशाली महाप्राणत्व के साथ Resusicitation जान पड़ता है, और अहि की व्युत्पत्ति अथि से मानी जा सकती है। या संभवतः—अहि का इ शक्तिशाली अइ का प्रतिनिधि है। यह स्मरणीय है कि आधुनिक मैथिली के समान-अथि कोई आदर सूचक भाव व्यक्त नहीं करता। चटर्जी, पृ० ६३६)।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ए के दो उदाहरण मिलते हैं (करे पृ० ३४, खरिदे पृ० ३६ जो वस्तुतः अइ का आगे का विकास है। अ के वर्तमान काल के १० उदाहरण हैं (जैसे—कर पृ० ३४, बाज पृ० ५२, बस पृ० ३६, होअ पृ० ३८)। -अ के भूतकाल के कुछ उदाहरण हैं (देखो २१ (अ)। इस प्रकार एक अ का रूप तुलसी दास में भी पाया जाता है। इसका मूल क्या है? क्या यह अइ के अंत्य इ का लोप प्रकट करता है? परंतु इसका समर्थन आधुनिक भाषा से नहीं होता। मैथिली या अवधी! क्या पूर्ण कृदंत यहाँ वर्त्तमान की भाँति प्रयुक्त मिलता है?

सूचना—कुछ उदाहरणों में—आ, ए और ओ की धातुएँ अपने

आप मिलती हैं। विना, किसी Desinence के (जा पृ० ३४, खा पृ० ४२, दे पृ० ४२, हौ पृ० १०२, ले पृ० ८६)

अ० पु० ब० प०—(अ) रूप में—अहि सर्वाधिक प्रचलित है जैसे देरहि पृ० २६, आनहि पृ० २८, (आ) के केवल ३ उदाहरण हैं—(तौल्लन्ति पृ० ३८, हसाहन्ति पृ० ३८, पक्षालेन्ति पृ० १०६। दोनों प्राचीन आति से संबद्ध है।

२१—भूतकाल

यह प्राचीन पूर्ण कृदत पर आधारित है। बाहुल्य के कारण रूपों की विभिन्नता स्पष्ट नही है, और उनका प्रयोग बिना पुरुषों के सबंध के है। एक ही रूप उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष कर्त्ता के साथ प्रयुक्त मिलता है। प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

(अ) ओ, उ, उँ, अ, आ एक वचन में और ए बहुवचन में।

(आ) औं (-ऑ)।

(इ) इअओ, -इअउँ (-इअउ), -इउ।

(ई)-इअ, -इन, -इआ।

(ए)-इओ

(ऐ) अल, -अलि।

(अ)-ओ में इस रूप के चार उदाहरण हैं (जैसे मिमजो पृ० १०८, खरो पृ० १०६) -उ में बारह पद, बगु पृ० १८, पसरु पृ० ३२, पुच्छु पृ० ५८) -अ में लगभग बीस (पइट्ठ पृ० ४६, भाग पृ० ३०), आ मे चार (पृ० २०, बिका पृ० ६८, आआ पृ० ६४, बहुराना पृ० ४८) और ए मे सात (पइट्ठे पृ० ३८, मरे पृ० ३८, थारे पृ० ४६)।

(आ) इस प्रकार के रूपो की बहुत बड़ी संख्या है, -इअ के साथ ये संख्या में सबसे अधिक है। बहुत कम उदाहरणों में अनुनासिकता का अभाव है। जैसे—

उँपन्नउँ पृ० १६, हुअउँ पृ० ८।

(इ) इअश्रो का एक उच्चारण है (धन छोड़िओ पृ० २२), इअउँ के बहुत से उदाहरण हैं (जैसे—करिअउँ पृ० ८, तुम्हें मरिअउँ पृ० ६०, करिअउ पृ० २४।) ईंउ के बहुत थोड़े से उदाहरण प्राप्त हैं (जैसे जेन, निवँ, कुल उद्धरिउँ पृ० ८)।

(ई) इस प्रकार के रूपों की संख्या बहुत है, इअँ इअ का अनुनासिक रूप मात्र है (जैसे—जेन चले रावण मारिअ पृ० ८, रिउँ दलिअ तुम्हें पृ० ६०, महल को मम्म जानियँ पृ० ५२)। इआ के केवल ६ उदाहरण हैं, जो छंद की सुविधा के लिए इअ का दीर्घीकरण मात्र (जैसे—पअ भरे पथर चूरीअ पृ० ४६)। उग्गिअ पृ० ३२ और चुकिइ पृ० ६२ में इ-है।

(ए) एओ—इस रूप के ६ उदाहरण हैं (जैसे—जेन्हे साहि करो मनोरथ पूरेओ पृ० १४)।

(ऐ) अल (इल)—केवल ४२ उदाहरण इस रूप के प्राप्त हैं। अल पुल्लिंग है और अलि स्त्रीलिंग (जैसे—सुरतान समानल पृ० १०, रूसलि विभूति पलटाए, आनलि पृ० १४)। एक उदाहरण में रूव के अंत में-इल (स्त्री०) मिलता है। (गोमठ पुरिल वही पृ० ४४)।

उपर्युक्त रूपों में हमें प्राचीन पूर्ण कृदंतों की कई अवस्थाएँ मिलती हैं—साधारण और दीर्घकृत-इ के साथ और बिना-इ के। अनुनासिकता का कारण बताना कठिन है। -इ रूव वस्तुतः कृदंत शब्दांत (base) तथा इल्ल प्रत्यय हैं। आधुनिक मैथिली को ध्यान में रखते हुए भूतकाल के सब रूप-ल कृदंत पर आधारित हैं। प्रस्तुत पाठ में इनकी कम संख्या आश्चर्यजनक है।

अन्य पुरुष बहुवचन क्रिया का केवल एक उदाहरण उपलब्ध है—(लहेन राय गएनेस पृ० १८) जहाँ-एन पुरुषवाचक प्रत्यय जान पड़ता है।

सूचना—बहुत से स्थलों पर पूर्ण कृदंत विशेषण की भाँति प्रयुक्त मिलता है जैसे वेश्र पढ पृ० ८।

२२—भविष्यकाल।

भविष्य के केवल निम्नलिखित उदाहरण हमें पाठ में मिलते हैं—

उ० पु० कहबा पृ० १०

म० पु० (तुम्हे ण) होमउँ (अमहना) पृ० ६०

अ० पु० होसइ पृ० ४,६४,६४

दूसिहइ पृ० ४

सिभिहइ पृ० ६२

करिह पृ० ४, बुभिहइ पृ० ४, जिवहि पृ० ७२, धरिजिह पृ० ७४, दीजिह पृ० ७२, होइअ पृ० ३०

इनमें से कहबा तव्य > अव्व पर आधारित है, तथा शेष प्राचीन भविष्य काल पर : होसउँ > भविष्यय > होइस्सह > होइस्सहु > होसउ, वर्ण स—ह हो जाता है (जैसे—दूसिहइ में) अथवा लुप्त भी हो सकता है (जैसे—होइअ)

सूचना—उपर्युक्त सामान्य अवस्था के रूप हैं। सभावनार्थ के लिए अलग से रूप नहीं हैं, सामान्य के ही रूप जइ या जओ के साथ इस भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। संभावनार्थ का दूसरा रूप (Gonditional) अपूर्ण कृदत पर आधारित है (देखो विभाग २४), इसके केवल दो उदाहरण मिलते हैं (तओ) सिह्वात (रज्ज) पृ० ५६ (आर्ने कत) सहत (जे राए) पृ० ७४।

२३ आज्ञार्थक

म० पु० ए० व०—आठ उदाहरण हैं: (अ)-अ में, सुण पृ० ६४, सुन पृ० ६, भण पृ० २२, कह-कह पृ० ८०, अनुसर पृ० ११२ (आ) हि में, जहि पृ० ११२ (इ) इउ में, करिउ पृ० ६२, हरिजिउ पृ० ६४।

इनमें से (इ) कदाचित् प्राचीन म० पु० ए० व० आत्मनेपद-स्व (कुरुष्व) से संबद्ध है।

म० पु० ब० व०—६ उदाहरण मिलते हैं : करहु पृ० २०, कहहु पृ० १६, ५०, ५६, करओ पृ० ५८, सुनओ पृ० ३८,१६ भुंजह पृ० १८, सज्जह सज्जह पृ० ८२।

ये सब -था में प्राचीन मध्यम पुरुष वर्त्तमान बहुवचन पर आधारित हैं, जो प्राकृतों की किसी अवस्था में थो > हो > हु: ह हो गया था।

अ० पु० ब० व०—प्राप्त आठों उदाहरण प्राचीन-तु पर आधारित है (रहउँ पृ० २८, जाउँ पृ० २२, जाउ पृ० ७६, साहउ पृ० १०, जिअउ पृ० १०, करउ पृ० १०, करओ पृ० ६०; करिअउ पृ० ३८।

उपर्युक्त के अतिरिक्त एक impersonal passive imperative—अइ और -इअ में मिलता है, जैसे—एहु कम्म न करिअइ पृ० १८, सोविअइ पृ० ६४, करिज्जइ पृ० ६४, धरिअइ पृ० १८, जाइअ पृ० ६८, आनिअ पृ० ६८, चानिअ पृ० ६८। यह वर्तमान कर्मवाच्य पर आधारित है।

२४ अपूर्ण कृदंत

इसका प्रयोग प्रायः किसी एक वस्तु की स्थिति का वर्णन करते समय होता है, तथा कभी-कभी इसका प्रयोग वर्त्तमानकालीन मूल क्रिया के स्थान पर होता है।

इसके दो रूप है :

(अ)—अंत (आ)—अंते

(अ) जैसे—अवे वे भणांता (तुरुका) पृ० ४०, आवन्ता जन्ता फल करन्ता मानव पृ० ४८, पूवविए वाला आवन्ता पृ० ४६

(आ) जैसे…हाथी…आथी भागन्ते गाछ चापन्ते पृ० ८२, सिकार खेलन्ते…परदप्प ममि भजंते…बाट संतरि…सुरतान बइठ।

सूचना १—अन्त के कुछ उदाहरण (बोलन्त पृ० ७४), दुरन्त पृ० १०६, बुड्न्त पृ० १६, १०६, तथा अन्तश्रो के कुछ उदाहरण (भनन्तश्रो पृ० ४६), एव-अन्तो के कुछ उदाहरण (करन्तो) पाए जाते हैं।

सूचना २—पृ० ६० पर जाइते और खाइते कृदंत के रूप से जान पड़ते हैं। मैं उन्हें संज्ञार्थक क्रिया के विकृत रूप (देखो खंड २८) तथा परसर्ग से संबद्ध मानता हूँ।

इस कृदंत का प्रयोग पाठ में वचन एवं पुरुष के परिवर्त्तन से अप्रभावित होकर हुआ है। उदाहरणार्थ पृ० ४६ पर भमन्तश्रो, उअश्रो राजकुमार का विशेषक है, और पृ० ३४ पर खण्डन्ते इत्यादि वेश्याहि का विशेषक है।

-श्रो एवं-श्रा (अ) रूप प्राकृत कृदत के कर्त्ता कारक हैं।—ए रूप जहाँ यह कर्त्ता है, मगधी कर्त्ता-ए का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ स्थलो पर यह कृदत का अविकरण है जैसे-महाजनहि करो बोलन्ते पृ० १८।

सूचना—एक स्थल पर-अन्ते के तुक के कारण परिवर्तित होकर अदे हो गया है (बिहरदे पृ० ४६)। -अलइना पृ० ३४ मे क्या प्राचीन प्रत्यय-आन (अलभमानः) का उदाहरण है ?

२५. The Absolutive

इसकी अभिव्यक्ति (अ)-इ अथवा (आ)-इअ जोड़ने से होती है जैसे—गइ, थइ पृ० ४२, साधि पृ० १४, छोड़िअ पृ० ७०, करिअ पृ० ७६, विस्थारिअ पृ० ८८)। (आ) के केवल १२ उदाहरण हैं और एक स्थल पर प्रत्यय अनुनासिक जान पड़ता है बिसर्मिअँ पृ० ५२। कुछ स्थलों पर (अ) क-इ,-ए के समान जान पड़ता है (जैसे— मनुसाए पृ० ६६, धाए पृ० ६२, धाअे पृ० ६०)

Absolutive प्रायः बिना परसर्ग के पाया जाता है। केवल कहुँ ६ बार आता है (धाए कहु पृ० ६२, दमसई कहुँ पृ० ६६, सुनि कहुँ पृ० ६८, ठेल्लि कहुँ पृ० १००) पलटि कहुँ पृ० ११०। सम्माद्दि कहुँ पृ० ८।

जा पृ० ८८, ले ले पृ० ४० में धातु रूप स्वयं alsolutive व्यक्त करता है, तथा वेचा पृ० ६८, आँ और पुच्छिहि पृ० ५२ में इहि एक alaolutive की ओर संकेत करता जान पड़ता है।

–इअ, इ की व्युत्पत्ति प्राकृत इय से है, जो इ हो सकता है, और बाद में एकदम लुप्त भी हो सकता है। जैसे—जा, लै में।

२६ कर्मवाच्य

संयुक्त कर्मवाच्य प्राकृत के-इज-और-ईअ-से व्युत्पत्ति-संभव, २७ रूपों में मिलता है, ७-ज-और २०-ई-। उदाहरणार्थः

जेन्हे यह हुआ जम सहिजिअ पृ० ७६

सुह मुहुत्त अहिशेक किजिअ पृ० ७६

अरु कत धागइ देखिअथि पृ० ६०

जे सब करिअउँ अथ बस पृ० १०

संयुक्त कर्मवाच्य √जा के साथ केवल २ या ३ बार आता है; चूरि जा वसुंधरा पृ० ८४, बहुत बापुर चूरि जाथि पृ० ३०

२७ प्रेरणार्थक

प्रेरणार्थक के लगभग बारह उदाहरण है। जैसे—पतला पृ० १४, करावए मारि पृ० ६०, बैठाव पृ० ४२, इन सबकी व्युत्पत्ति प्राचीन प्रेरणार्थक अ और-आव से संभव है।

२८ क्रियार्थक संज्ञा

चार उदाहरण मूल कारक-रूपों के हैं (जीअना < जीवन-क पृ० २०)

बसमे पानेल पृ० २४, देभा पृ० ४४, मारि पृ० ६०) जिनको (अ) प्राचीन-अन-तथा (आ)-ए से सबंधित करना चाहिए। विकृत रूप के आठ उदाहरण हैं (बाइते पृ० ४४, रहइतें पृ० ८६, करइते पृ० ६२, सेवइ पृ० ६०, दीवइ हणे पृ० ६८, दिगाइए पृ० ३०, किनइ ते पृ० ३०, बिकाएँ पृ० ३०, चुआए, पृ० ६८ बोली, बोलए पृ० २०)। यह विकृत रूप क्या है ? चटर्जी (वैं० लै० में पृ० १०१४ पर) इसे मात्र क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप मानते हैं, जो -इ में है, तथा इस-इ को प्रत्यय बताते हैं।

भन रूप (अ) एकबार-इ में समाप्त होता है (बुभभनि पृ० १८)

कर्तृ वाचक सज्ञा

इसका केवल एक उदाहरण है बुभभनि-हार पृ० १८, हार का संबंध धारक से जोड़ा जा सकता है।

२६ क्रिया 'होना'

इमें ३ धातुओं के रूप मिलते हैं।

(अ) $\sqrt{}$अस, इइ पृ० ४०

(आ) $\sqrt{}$भू (१) हो पृ० ६६, होअ पृ० ३६, होइ पृ० १०२, हुअ पृ० ६४, होअउँ पृ० ७६, हुअमीं पृ० १००, हौसइ पृ० ६४, हौसउँ पृ० ६०

(२) भइ पृ० १००, भए, पृ० ७०, भउँ, भउ पृ० ६८ भेल पृ० १०२, भोलि पृ० १४

(इ) $\sqrt{}$रह रहु पृ० ६६, रहइ पृ० ४२, ८६, रहिअउ पृ० ७०

३० संयुक्त काल

संयुक्त काल के रूपों के उदाहरण बहुत कम हैं। निम्नलिखित प्राप्त हैं—

आवत्त हुअ पृ० ६४
रिसिआइ हइ पृ० ४०
सहि रहिअउँ पृ० ७०
उद्दि रहे पृ० ११०

२१ संयुक्त क्रिया

संयुक्त क्रिया के २४ उदाहरण हैं—

(अ) √चह चाहने की भावना को व्यक्त करता है : भागए चह पृ० ३६, उपर चढ़ावए चाह पृ० ४४

(आ) √लाग किसी कार्य के प्रारंभ करने की अवस्था को व्यक्त करता है—बोली लागु पृ० २०

(इ) √पाव और √पार किसी कार्य को करने की क्षमता को व्यक्त करता है—किनइते पावथि पृ० ३०, बसवे पानेल पृ० २४, चुअए पाइअ पृ० ६८; गणए णा पारला पृ० ४६, गणए न पारिअइ पृ० ६४ सहहि न पारइ पृ० ६०

(ई) √जा, √ले और दे किसी कार्य के पूर्णत्व या घनत्व को व्यक्त करता है ?

भए गेल पृ० १६, ६०, मर गए पृ० १०४, धाए गए पृ० १०८, लाधि जाथि पृ० ८४, भए जा पृ० ८६, जिती जा पृ० ८६, देखाए जा पृ० १००, खाइ ले पृ० ४०, छोलि ले पृ० ८६, पृ० मेलि देओ ११०, बाहर फए देल पृ० ८०, दीलिहि बन्ध पृ० ७२

क्रिया विशेषण

२२. स्थानवाची

(अ) सर्वनाम पर आधारित

(१) जहाँ—जम पृ० २६, जहा पृ० १०८, २४,-६८ जहिम पृ० ३८, ६०, जइध कें पृ० ११२ जहाँ कहीं-जम जम पृ० ६८, जहिम-अहिम पृ० १०६

(२) कहाँ ?—कइ पृ० ६, कहीं-कही, कहीँ पृ० ३८, कतहु पृ० ४२, ४४

(३) यहाँ—इअ पृ० ४८, वहँ पृ० ५८, ऐहु पृ० ६६

(४) वहाँ—तथ्य पृ० ३८, तमतम पृ० ६८, ताहा पृ० ५८, तहा पृ० ७२, १०८ तहीं तहीं ह० १०६, ओहु पृ० ६६, उथि उथि पृ० ५०

(५) सब जगह—सब तहुँ पृ० ३८,६०, एक स्थान पर एकट्ठ पृ० ८

(आ) अन्य प्राचीन क्रियाविशेषणों पर आधारित

ऊपर—उँप्पर पृ० ३४, उँप्परि पृ० ३२, उपर पृ० ४४, उप्पर पृ० ६०, उप्परि पृ० ५०

अंदर—भीतर पृ० ४२, सामने—अग्गि पृ० ६६, सजो पृ० ११२, सोझ पृ० ११२

पीछे—पाछे पृ० ६४, पाछु पृ० १०२, १०८, पछु पृ० ४०, पीछे पृ० ६६

बाहर—बाहर पृ० ४६,८०, बाहरओ पृ० ६२; पास—निअर पृ० ११०, पास पृ० ८८

दूर—दूर पृ० ३८, ५२, बड़ा दूरअ पृ० ६०, सब तरफ से—चौपट पृ० ११० अतरे पटरे पृ० ४८

३३ समयवाची

(अ) सर्वनामों पर आधारित

(१) जब—जम पृ० ३४, जब पृ० ६६, जबे पृ० १८, १६, ३०, ३४, जाबे पृ० ७६, जमरा पृ० ४०; जब कभी—जब ही पृ० ४२, जखणे पृ० ६६, ६६

(२) अब—अबे पृ० ५८, अबहि पृ० ६२

(३) तब—ता पृ० ५२, ११६, तब पृ० १००, तब्बे पृ० ५६, ११० तबे पृ० २२, ३४ तावे पृ० ७६, तबही पृ० ५२, तलो पृ० ३८ तउ पृ० ५८, तोउ पृ० ५२, तं खने पृ० २६, तम खणे पृ० ६०, ७२, ८८, ११२; तब भी—तबहु पृ० ४२, ७०, तब्बहुँ पृ० ५८

(४) कभी कभी—कबहु पृ० १८, ६०

(आ) अन्य क्रियाविशेषण पर आधारित

आज—अज पृ० ५८, अज्जु पृ० १००, आज पृ० ३०, अभी तक—अद्य पर्यंत पृ० ५०; पहला—पढम पृ० ५८; लंबा-चिरे पृ० ४४; इसी बीच—इत्थंन्तर पृ० ६४; फिर—पुनु वि पृ० ६२, ७६, पुनः पृ० ५६, पुनु पृ० १२, १८, २८, ५६, ५८, ६४, ७६, ११२, निचइ; सदा—एक बार—सहसहि पृ० ६०

३४ प्रकारवाची

(अ) सर्वनामों पर आधारित

(१) जैसे—जिमि पृ० ८६, जसे पृ० ६४, जसों पृ० ४२, जँसवे पृ० ३२

(२) कैसे—कैसे पृ० ३६ किमि पृ० ४, १६, ७२, ८०, किमि करि पृ० ८०, कस पृ० ८३, काजि पृ० ४, कमरा पृ० ४, कमने पृ० ४८, कस पृ० ७४

(इ) इस प्रकार—अस पृ० १८

(आ) अन्य प्राचीन क्रियाविशेषणों पर आधारित

इस प्रकार—एव पृ० ७०, एवँच पृ० ६८, एम पृ० ५१, ६०, ११२

३५ अन्य क्रियाविशेषण

नहीं—न, २० बार, जैसे, पृ० ४, ६; न ७ बार जैसे पृ० ८, नहि १४ बार जैसे पृ० १८, णहि ६०; नहीं पृ० ६८, नाहिं पृ० ६४, ६४, नहु पृ० ७०, निश्चय—णिचय पृ० ४, हु पृ० ६, धुअ ६ बार जैसे पृ० ६४ अवस पृ० ६०, अवसओ पृ० ४, २६ वृथा–पृ० २०, अति-पृ० ३६, ४०, ७० ससरें पृ० ३६; क्यों-काइ पृ० ६८, किंनि पृ० ८२, की पृ० ११२, साथ - मग पृ० ८४, सथ्थे पृ० ११२, इत्यादि प्रभृति ८६

३६ समुच्चयबोधक

(a) Cumulative—और—अवर पृ० १००, अरु १० बार जैसे पृ० ८, अवरु पृ० १, ८, २२, २८, १०६; फिर और-अवि अ पृ० २८, अपि ६६

(b) Alternative—वरु पृ० २२, कि पृ० २२

(c) Adversative—किंतु-पइ पृ० २०, ६४, ७२, पए पृ० ५०, किंतु नहीं णा उँण पृ० २२, न उण पृ० २०, न ज़ॅण पृ० २०

यदि- जइ ८ बार पृ० ६, जें पृ० १००, जओ पृ० २२, जा पृ० ७४, जउ पृ० ४२, जओ पृ० ११२, जम, पृ० २२, तब-अथ पृ० १६ ५६, ता ५ ६, तम पृ० ६२, तउ पृ० ७०, तोवि पृ० १०२, तो ६ बार जैसे पृ० ६०, तइ, पृ० ११२, तओ पृ० १००, इसलिए–तैसन पृ० ६, मानों-जनि ८ बार जैसे पृ० ४८

(d) Subordinative के पृ० ७४

३७ बलात्मक रूप

(अ) हु, ओ, उ संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रियाविशेषण के साथ जोड़े जाते हैं—जैसे प्रभुहु पृ० २४, वहुओ पृ० २६, बिगाहु पृ० ७२। इस प्रकार के लगभग ३० रूप पाठ में हैं। ये प्रत्यय खलु > खु > हु > उः ओ से आकर जुड़ते हैं।

(आ) -हि,-इ संज्ञा सर्वनाम, विशेषण और क्रियाविशेषण के साथ जोड़े जाते हैं—सीमित होने का भाव देने के लिए जैसे—धम्म पसारइ पृ० ७२, पढमहि पृ० ८२। इस प्रकार के लगभग १२ रूप पाठ में हैं। इस प्रत्यय का संबंध कदाचित्, एव से है,—बलात्मक होते हुए।

कीर्ति-लता

मूल

(प्रथमः पल्लवः)

पितरुपनयमह्यंबाकनद्या मृणालं
न हि तनय मृणालः किन्त्वसौ सर्पराजः ।
इति रुदति गणेशे स्मेरवक्त्रे च शम्भौ
गिरिपतितनयायाः पातु कौतूहलं वः ॥ १ ॥

अपि च

शशिभानुबृहद्भानुस्फुरत्त्रितयचक्षुषः ।
वन्दे शम्भोः पदाम्भोजमज्ञानतिमिरद्विपः ॥ २ ॥
द्वाः सर्वार्थसमागमस्य, रसनारङ्गस्थलीनर्तकी
तत्त्वालोकनकज्जलध्वजशिखा वैदग्ध्यविश्रामभूः ।
शृङ्गारादिरसप्रसादलहरीस्वर्लोकिकल्लोलिनी,
कल्पान्तस्थिरकीर्तिसम्भ्रमसखी सा भारती पातु वः॥३ ॥
गेहे गेहे कलौ काव्यं श्रोता तस्य पुरे पुरे
देशे देशे रसज्ञाता दाता जगति दुर्लभः ॥ ४ ॥

कीर्ति-लता

हिन्दी अनुवाद

(प्रथम पल्लव)

"पिता जी मुझे देवगंगा का मृणाल ला दीजिए," "पुत्र, वह मृणाल नहीं, वह तो सर्पराज है," इस बात पर गणेश जी रोने लगे और शंभु के मुख पर कुछ हँसी आ गई। यह देखकर पार्वती जी को बड़ा कौतूहल हुआ। वह कौतूहल तुम्हारा मंगल करे ॥ १ ॥

और भी

महादेव जी के चन्द्र, सूर्य और बृहत् अग्नि, ये तीन चमकती हुई आँखें हैं। वह अज्ञान रूपी अंधकार को नाश करते हैं। उनके चरणकमल की वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

सरस्वती तुम्हारी रक्षा करे। वह सब अर्थ के आने के लिए (समझने के लिए) द्वार स्वरूप है, जिह्वा रूपी रंगस्थली पर वह नर्तकी के समान है। तत्व के दर्शन करने के लिए वह दीपक की शिखा के समान है और चतुराई की विश्राम-भूमि है। शृंगार आदि रस रूपी निर्मल तरंगों के लिए वह मंदाकिनी है। प्रलय तक स्थिर रहनेवाली कीर्ति की वह प्रिय सखी है ॥ ३ ॥

कलियुग में (तो) घर घर काव्य है (और) नगर नगर में उसे सुनने वाले हैं। देश देश में रस के जानने वाले हैं। (किन्तु) इस संसार में दाता दुर्लभ हैं ॥ ४ ॥

श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्तिसिंहमहीपतेः ।
करोतु कवितुः काव्यं भव्यं विद्यापतिः कविः ॥

दो०—तिहुअन खेत्तहि काञि तसु कित्तिवल्लि पसरेइ।
अक्खरखम्भारम्भओ मञ्चो बन्धि न देइ ॥ १ ॥
ते मोञे भलओ निरुढि गए, जइसओ तइसओ कव्व।
खल खेलब्बल दूसिहइ, सुअण पसंसइ सव्व ॥ २ ॥
सुअण पसंसइ कव्व मझु, दुज्जन बोलइ मन्द।
अवसओ विसहर विस वमइ, अमिअ पिमुकई चन्द॥३॥
सज्जन चिन्तइ मनहि मने मित्त कारिअ सव कोए।
मेअेक हन्ता मुज्झु जइ दुज्जन वैरि ण होए ॥४॥

बालचन्द विज्जावइभासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ, ई णिचइ नाअर मन मोहइ ॥

का परबोधओ कमण पणावओ[१]
किमि, नीरस मने रस लए लावओ।
जइ सुरसा होसइ मझु भासा,
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा ॥

महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कव्वकलाउ छइल्ल।
सज्जन पर उअआर मन, दुज्जन नाम मइल्ल ॥

---

१ यदि मराावओ पाठ होता तो अच्छा था।

महाराज कीर्तिसिंह (काव्य) सुनने वाले, दान देने वाले उदार हृदय तथा स्वयं काव्य रचना करनेवाले हैं। उनके लिए मनोरंजक (सुन्दर) काव्य कवि विद्यापति निर्माण करें (करते हैं ?) ॥५॥

दो० यदि अक्षर रूपी खंभ आरंभ करके मंच न बांध दिया जाय तो त्रिभुवन क्षेत्र में लता रूपी उनकी कीर्ति कैसे फैले ॥१॥

मेरा जैसा तैसा काव्य प्रसिद्धि प्राप्त कर ले मेरे लिए यही भला (बहुत) है। दुष्ट जन खेल के कपट से दोष निकालेंगे (किन्तु) सज्जन सब की प्रशंसा करेंगे ॥२॥

सुजन मेरे काव्य की प्रशंसा करते हैं, दुर्जन बोलते हैं यह मन्द (बुरा) है। सर्प अवश्य ही विष उगलता है तथा चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है ॥३॥

सज्जन सबको मित्र समझ कर मन ही मन (शुभ) चिन्ता करते हैं। 'यदि दुर्जन मुझे काट डाले अथवा मार डाले' तो भी बैरी नहीं' ॥४॥

बालचन्द्र और विद्यापति की भाषा इन दोनों को दुर्जन की हँसी नहीं लगती, (यतः) वह (चन्द्र) परमेश्वर महादेव के मस्तक पर विराज कर शोभा को प्राप्त है और यह (विद्यापति की भाषा) नित्य ही (सहृदय) नागरिकों का मन मोहती है।

मैं प्रबोध किस प्रकार करूँ, किस प्रकार जतला दूँ (मनाऊँ ?) नीरस मनमें किस प्रकार रस लाकर भर दूँ। यदि मेरी भाषा सुरस होगी, तो जो समझेगा वही प्रशंसा करेगा।

भ्रमर ही फूलों के रस का मूल्य समझता है, कला-विज्ञ पुरुष ही काव्य का रस ले सकता है। सज्जन का मन परोपकार में लीन रहता है (किन्तु) दुर्जन का मन (सदा) मलिन होता है।

---

१ यदि दुर्जन मेरा भेद कह दे (भेश्रक हन्ता को यदि भेश्र कहन्ता पढ़ें)

सक्कय वाणी बहुअ[1](न)भावइ, पाउँ अरस को मम्मन पावइ ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तँ[2] तैसन जम्पओ अवहट्ठा ॥

भृङ्गी पुच्छइ भिङ्ग ! सुन की संसारहि सार ।
मानिनि जीवन मान सओ वीर पुरुस अवतार ॥
वीर पुरुस कइ जम्मिअइ नाह न जम्पइ नाम ।
जइ उंच्छाहे फुर कहसि हओ आकण्डन[3] काम ॥

– किति[4] लद्ध[5] सूर सङ्गाम, धम्म पराअण हिअअ, विपअकम्प नहु दीन जम्पइ । सहज भाव सानन्द सुअण भुंजइ जासु संपइ । रहसें दव्व दए विस्सरइ । सत्तु सरुअ सरीर ।

एत्ते लक्खण लक्खिअइ पुरुप पसंसओ वीर ॥

जदौ-पुरिसत्तणेन पुरिसओ नहि पुरिसओ जम्ममत्तेन ।
जलदानेन हु जलओ नहु जलओ पुञ्जिओ धूमो॥
सो[6] पुरिसओ[7]जसुमानो सो पुरिसओ[8]जस्स अज्जने सत्ति ।
इअरो पुरिसाआरो[8] पुच्छविहूना पसू होइ ॥

---

१ शा० बुहअन, पाठ 'बहुअ न' उचित है ।

२ शा० तैं ।

३ शा० आकण्णन ।

४ शा० किचि, क० किद्दि० ५ शा० लुद्ध ।

६ ख० पोथी का यहां से 'श्रीगणेशायनम.' है । ७ पुरसो । ८ रिपुसाआरो । ६ विहुना ।

संस्कृत भाषा बहुत लोगों को (दुर्गम होने के कारण) भली नहीं लगती, प्राकृत भाषा रस का मर्म नहीं पाती[1]। देशी भाषा (वचन) सब लोगों को मीठी लगती है, इसी से अवहट्ट (अपभ्रंश) में रचना करता हूँ ॥

भृङ्गी पूछती है—"हे भृङ्ग सुनो, संसार में सार वस्तु क्या है ?" "हे मानिनि ! मान सहित जीवन और वीर पुरुष होना"। "यदि वीर पुरुष का कहीं जन्म हुआ है, तो नाथ ! नाम (क्यों) नहीं बोलते। यदि उत्साहपूर्वक स्फुट रूप से कहो तो मैं सुनना चाहती हूँ।"

"कीर्ति को प्राप्त किया हो, संग्राम में शूर हो, उसका हृदय धर्म परायण हो, विपत्ति कर्म (?) में भी दीन वाणी न बोले, सुजन जिसकी संपत्ति का आनन्दपूर्वक सहज ही भोग करें, जो गुप्तरूप दान करे और उसे भूल जाय और शरीर बलवान हो (?); इतने लक्षणों से युक्त पुरुष को वीर समझ कर उसकी प्रशंसा करता हूँ।

जदौ। सच्चा पुरुष वही है जिसमें पुरुषत्व हो केवल जन्म से ही कोई पुरुष नहीं होता। मेघ को जलद तभी कहेंगे जब वह जलदान करे। एकत्र किए हुए धूम को जलद नहीं कहते।

पुरुष वही है जिसका मान हो, पुरुष वही है जिसके धनोपार्जन शक्ति हो। और सब पुरुष के आकार के पशु हैं अन्तर केवल इतना ही है कि उनके पूँछ नहीं होती।

[१ शा० के पाठानुसार 'संस्कृत पण्डित लोग समझते हैं, साधारण जन उसका रस नहीं पाते'।]

पुरिस काहानी हओं[1] (कहओ) जसु पत्थावे पुराइ[2] ।
सुक्ख सुभोअन सुभवअण[3] देवहा[4] जाइ सपुन्न ॥
पुरुप हुअउँ[5] वलिराए जासु कर कहु[6] पसारिअ ।
पुरिस हुअउँ रघुतनअ जेन बले रावण मारिअ ॥
पुरिस भगीरथ हुअउँ जेन निअ[7] कुल उद्धरिउँ ।
परसुराम अरु पुरिस जेन खत्तिअ खअ करिअउँ ॥
अरु पुरिस पसंसओ[8] राय गुरु कित्ति सिंह गएणेस सुअ ।
जें सत्तु समर सम्मदि कहु वप्प वैर उद्धरिअ धुअ ॥
राय चरित्त रसाल एहु णाह न राखहिं[9] गोइ ।
कवन वंस को राय सो कित्तिसिंह को होइ ॥
तक्ककक्कस वेअ-पढ तिन्नि, दाने-दलिअ[10] दारिद,
परम-वह्म-परमत्थ बुज्झइ, वित्ते वटोरइ[11] कित्ति,
मत्ते सत्तु[12] सङ्गाम जुज्झइ ।
ओइनी वंस पसिद्ध जग को तसु करइ ण सेव ।
दुहु एकत्थ न पाविअइ भुअवै अरु भूदेव[13] ॥

---

१ सुपुरिस कहनी हौ कहउ । २ पुन्न० । ३ सुहवयन । ४ दिअहा ।
५ हुअनु (सब जगह) । ६ क० कन्ने । ७ णिअ । ८ पसशिय ।
९ राखेहु ।
१० दरै । २१ विथारै । १२ सचइल लागि ।
१३ पाये एक भुअवै भुअदेव ।

मैं उस पुरुष की कथा कहता हूँ जिसके प्रस्ताव से पुण्य हो, सुख हो, अच्छा भोजन मिले शुभ वचन मिलें तथा देव-लोक की प्राप्ति पुण्य के कारण हो।

राजा बलि थे पुरुष जिनके आगे कृष्ण (विष्णु) ने हाथ पसारा, रामचन्द्रजी थे पुरुष जिन्होंने (बाहु) बल से रावण को मारा, पुरुष थे भगीरथ जिन्होंने अपने कुल का उद्धार किया, और परशुराम थे पुरुष जिन्होंने क्षत्रियों का संहार किया। और एक और पुरुष की प्रशंसा करता हूँ— गणेश्वर के सुत राजाओं में श्रेष्ठ कीर्तिसिंह की जिन्होंने संग्राम भूमि में बैरी को तहस-नहस कर अपने पिता के बैर का बदला लिया।"

"इस राजा का चरित्र बड़ा रोचक है, नाथ उसे गुप्त न रक्खें। वह राजा किस वंश का है। कीर्तिसिंह कौन है।"

"(उस वंश के राजा) तर्क में कर्कश वेदपाठी, तीन प्रकार के दान से दरिद्रता के दलन करनेवाले, परम ब्रह्म परमार्थ जाननेवाले, धन से कीर्ति संचय करनेवाले, बल से युद्ध में शत्रु से लड़नेवाले।

(ऐसा) ओइनी नाम का वंश जग-प्रसिद्ध है, कौन उसकी सेवा नहीं करता। भुजपति (क्षत्रिय ?) और भूदेव (ब्राह्मन ?) और कहीं एकत्र नहीं देखे जाते।

जेन्हे खण्डिअ पुब्ब वलि कन्न, जेन्हे सरण परि
हरिअ, जेन्हे अथिजन विमन न किज्जिअ, जेइ अतत्थ[१]
भणिआ, जेइ न पाउँ उमग दिज्जिअ[२] ॥
ता कुल केरा बड्डिपन कहवा कवन[३] उँपाए।
जज्जम्मिअ उंप्पन्नमति कामेसर सन राए ॥

अथ छपद

तसु नन्दन भोगीसराअ, वर भोग पुरन्दर।
हुअ[४] हुआसन तेजिकन्ति कुसुमाउँह सुन्दर ॥
जाचक-सिद्धि केदार-दान पञ्चम वलि जानल।
पिअसख भणि पिअरोजसाह सुरतान समानल ॥
पत्तापे, दान, सम्मान गुणे, जे सव करिअउँअप्प वस।
वित्थरिअ कित्ति महिमण्डलहिँ कुन्द कुसुम संकास जस ॥
दोहा—तासु तनअ नअ विनअ गुन[५] गरुअ राए गएनेस।
जे पट्ठाइअ दसओ दिस कित्तिकुसुम संदेस ॥

---

१ क० जन्हि अतथे एहु भालअ।
२ क० जेन्हि पाजे जम्म गो दिजिअ।
३ क० कजोउ।
४ छन्द के लिए अ दीर्घ चाहिए।
५ क० नअ।

जिन्होंने पूर्वकाल के (दानी) बलि और कर्ण को दान में हरा दिया, जिन्होंने शरण नहीं ली जिन्होंने याचक जन को कभी निराश नहीं किया जिन्होंने असत्य नहीं कहा (और) जिन्होंने कुमार्ग में कभी पाँव नहीं दिया (क० जिनके चरणों में जन्म गँवा दिया जाय)

उस कुल का बड़प्पन किस उपाय से कहा जाय, जिसमें कामेश्वर के समान प्रौढ़ बुद्धि के राजा उत्पन्न हुए।

उनके (कामेश्वर के) पुत्र हुए भोगीसराय (भोगेश्वर)। यह इन्द्र के तुल्य वर भोगों के भोगनेवाले, यज्ञ होम करनेवाले तेजस्वी, कान्तिवाले, कुसुमायुध के समान सुन्दर थे। याचक जन के मनोरथ सिद्ध करने के कारण तथा क्षेत्र दान के कारण याचक उन्हें पाँचवाँ बलि (?) मानते थे। सुल्तान फीरोज शाह उनको 'प्रिय मित्र' कहकर आदर करते थे। उन्होंने अपने प्रताप, दान, सम्मान तथा गुण से सब को अपने वश में कर लिया था और कुन्द कुसुम के समान उज्ज्वल यश सारी पृथ्वी पर फैला दिया था।

उनके (भोगेश्वर के) पुत्र हुए गएनेसराय (गणेश्वर)। यह नीति, विनय तथा गुणों में गुरु थे और इन्होंने दशों दिशाओं को कीर्ति कुसुम रूपी संदेश भेजा था।

दाने गरुअ गएनेस जेन्ने[१] जाचक जन[२] रञ्जिअ।
मान गरुअ गएनेस जेन्हे रिउँ वड्डिम भञ्जिअ॥

सचें[३] गरुअ गएनेस जेन्हे[१] तुलिअओ[४] आखण्डल।
किचि गरुअ गएनेस जेन्हे[१] धवलिअ[५] महिमण्डल॥

लावन्ने[६] गरुअ गएनेस पुनु देक्खि स भासइ पचसर।
भोगीस तनअ सुपसिद्ध जग[७] गरुअ राए गएनेरा वर[८]॥

अथ गद्य॥ तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि मांभ पवित्र, अगणेयगुणग्राम[१०] प्रतिज्ञापदपूरणैकपरशुराम मर्यादामङ्गलावास कविताकालिदास, प्रबल - रिपुबल सुभटसंकीर्ण[११]- समरसाहसदुर्निवार, धनुर्विद्यावैदग्ध्य[१२] धनञ्जयावतार, समाचरित[१३]- चन्द्र-चूडचरणसेव, समस्त प्रक्रियाविराजमान, महाराजाधिराज श्रीमद्वीरसिंह देव।

- तासु कनिट्ठ गरिट्ठ गुण किर्त्तिसिंह भूपाल।
मेइनि साहउ[१४] चिरजिअउ[१५] करौ धम्मपरिपाल।

---

१ जेन अथवा जेरा। २ मन। ३ सत्य। ४ तुलिअउ। ५ क० रिअउँ। ६ लावन्य। ७ गुन। ८ क० पर। ९ युवराजन्ह मह। १० नेक गुण ग्रामाभिराम। ११ सघट्ट सुभट्ट। १२ धनुर्विद्या। १३ समा-दित्य। १४ क० साहउँ। १५ क० चिरजिअउँ। १६ क० करउँ।

वह दान करने में गुरु थे जिससे याचकों को प्रसन्न करते थे। मान में गुरु थे जिससे शत्रु का बड़प्पन नष्ट कर देते थे। वह बल में गुरु होने के कारण इन्द्र के समान थे। उसकी कीर्ति बड़ी थी और उससे मही मंडल को उज्ज्वल करते थे। और वह सौन्दर्य में भी गुरु थे देखने से कामदेव जान पड़ते थे। भोगीस के पुत्र गएनेस जगत्प्रसिद्ध श्रेष्ठ महान् पुरुष थे।

उनके पुत्र हुए महाराजाधिराजा श्रीमद्वीरसिंहदेव, युवराजों में पवित्र, अगणित गुणों के भाजन, प्रतिज्ञा वचन पूरा करने में परशुराम, मर्यादा के शुभ निवासस्थान स्वरूप, कविता में कालिदास तुल्य प्रबल शत्रु सैन्य के वीरों के साथ तुमुल युद्ध में साहस करने में सदा अग्रसर, धनुर्विद्या की चातुरी में अर्जुन के अवतार, श्री महादेव के चरणों की सेवा करने वाले, सब शुभ रीतियों को निभाने वाले।,

उनके छोटे भाई उत्कृष्ट गुणशाली राजा कीर्तिसिंह पृथ्वी का शासन करें, चिरंजीवी हों तथा धर्म का प्रतिपाल करें॥

जेन्हे राजे अतुलतरविक्रम विक्रमादित्य करेओ तुलनाजे,[1] साहस साधि, पातिसाह आराधि दुष्टा करेओ[2] दप्प चूरेओ, पितृ वैरि उद्धरि साहि करो मनोरथ पूरेओ ॥ प्रबलशत्रु बलसंघट्टसम्मिलनसम्मर्दसंजातपदाघाततरलतर-तुरङ्ग[3] खुरक्षुन्नवसुन्धराधूलिसंभारघनान्धकारश्यामसमर-निशाभिसारिकाप्रायजयलक्ष्मी कर ग्रहण करेओ । बूडन्त राज्य उद्धरि धरेओ । प्रभुशक्ति दानशक्ति ज्ञानशक्ति तीनुहु शक्ति क परीक्षा जानलि । रूसलि विभूति पल-टाए आनलि । तन्हि करेओ अहंकार सारेओ प्रबलतुरवा-रिधारातरङ्गसंग्रामसमुद्रफेणप्राय यश उद्धरि दिगन्त विथरेओ ॥

ईशमस्तकविलासपेशला
भूपतिमाररमणीयभूषणा ।
कीर्तिसिंहनृपकीर्तिकामिनी
यामिनीश्वरकला जिगीषतु ॥

इति श्रीविद्यापतिविरचितायां कीर्त्तिलतायां प्रथमः पल्लवः ॥ १ ॥

---

१ तुलनाओ १ दुट्ठकरो । ३ क० तरङ्ग ।

जिस राजा ने अतुलनीय विक्रम में विक्रमादित्य से तुलना की। उसने साहस करके बादशाह की आराधना की और दुष्टों का घमण्ड चूर किया। अपने पिता के बैरी को निकाल कर बादशाह का मनोरथ पूर्ण किया। प्रबल रिपुदल के संघर्ष से पदाघात के कारण चंचल हुए घोड़ों के खुरों द्वारा दलित पृथ्वी से (उठा हुआ) धूलिसमूह रूपी घोर अन्धकार छा गया, उस अंधकार से समर रूपी निशा अँधेरी हो गई। इस निशा में अभिसारिका स्वरूप आती हुई जय लक्ष्मी का इस राजा ने पाणि-ग्रहण किया। डूबते हुए राज्य को उद्धार करके रक्खा। प्रभुशक्ति ज्ञानशक्ति ज्ञानशक्ति इन तीनों शक्तियों की परीक्षा जानी। रूठी हुई सम्पत्ति को लौटाल लाया। उसने अहंकार करके अपनी तलवार की तरल धारा तरंग से संग्राम रूपी समुद्र दूर हटाया और उसमें से यश रूपी फेन निकाल कर सब दिशाओं के अन्त तक फैलाया॥

राजा कीर्तिसिंह की कीर्ति रूपिणी कामिनी जयशालिनी हो। स्वामी के मस्तक पर विहार करने से वह सुन्दर है और अतुलनीय सम्पत्ति ही उसका सुन्दर भूषण है। अतएव वह वस्तुतः चन्द्रकला के तुल्य है यतः निशानाथ की कला भी महेश्वर के मस्तक पर विहार करने से सुन्दर है और भभूति रूपी भार ही उसका सुन्दर भूषण है (श्लेष साध्य रूपक)॥

श्री विद्यापति की रची हुई कीर्तिलता का
प्रथम पल्लव समाप्त हुआ॥ १॥

(द्वितीयः पल्लवः)

अथ भृङ्गी पुनः पृच्छति ।

किमि उँप्पन्नउँ[1] वैरिपण किमि उँद्धरिउँ[2] तेन ।
पुण्ण कहाणी पिअ कहहु[3] सामिअ सुनओ[4] सुहेण ॥
लक्खणसेन नरेश लिहिअ जवे पक्ख पंच वे ।
तम्महु[5] मासहि पढम पक्ख पञ्चमी कहिअजे[6] ॥
रज्जलुद्ध[7] असलान बुद्धि विक्कम वले हारल ।
पास वइसि विसवासि राए गएनेसर मारल ॥
मारन्त राए रण रोल[8] परु[9] मेइनि[10] हाहासद्द हुअ ।
सुरराए नएर नाएर रमनि[11] वाम[12] नयन पफुरिअ धुअ ॥
ठाकुर ठक भए गेल चोरें[13] चप्परि घर लिज्झिअ[14] ।
दास गोसाउनि[15] गहिअ धम्म गए धन्ध निमज्जिअ ॥
खले सज्जन परिभविअ कोइ नहि होइ विचारक ।
जाति अजाति[16] विवाह[17] अधम उत्तम कां पारक[18] ॥

---

१ उपनेउ । २ उद्धरिअउ । ३ क० कहहि । ४ ? सुनओ । ५ क० तु । ६ कहिज्जै । ७ क० लद्ध । ८ हरोर । ९ भौ. शा० ड्डु । १० क० मेजिनि । ११ रवनि । १२ वाव । १३ चोर । १४ सजिअ । १५ गोमाउनि । १६ कुजाति । १७ ख० वआइ । १८ अधमेक उत्तम पतिपारक ।

(द्वितीय पल्लव)

भृङ्गी फिर पूछती है।

किस प्रकार वैर उत्पन्न हुआ और उन्होंने (कीर्तिसिंह ने) कैसे उसका उद्धार किया। हे प्रिय यह पुण्य कथा कहिए। हे नाथ मैं सुख से सुनूँगी।

लक्ष्मणसेन नरेश का जब २५२ सम्वत था तब मधुमास के प्रथम पक्ष की पंचमी को राज्यलुब्ध असलान ने बुद्धि में तथा पराक्रम बल में गएनेस से हार कर, पास बैठ कर और विश्वास दिला कर राजा गएनेस को मार डाला। राजा के मरते ही रण में शोर मचा, पृथ्वी भर पर हाहाकार मच गया, इन्द्रपुरी के नागरिकों की रमणियों के बाएँ नयन खूब फड़कने लगे।

जब गएनेसराय स्वर्ग गए तब ठाकुर ठग हो गए, चोरों ने जबर्दस्ती घर ले लिए, नौकरों ने स्वामियों को पकड़ रक्खा, धर्म गया, धन्धा डूब गया, दुष्ट सज्जन का परिभव करने लगे, कोई विचार करने वाला नहीं रहा, कोई जाति कुजाति में विवाह करने लगे, अधम उत्तम समझने वाला कोई नहीं रहा।

अक्खर रस बुज्झनिहार नहि, कइकुल भमि भिक्खारि भउँ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुणे रा गणेस[1] जबे सग्ग गउँ॥

राए बधिअउँ सन्त हुअ गेस, लज्जाइअ निअ मनहि मन, अस तुरक[2] असलान गुएणइ[3]। मन्द करिअ हओ कम्म। धम्म सुमरि निअ सीस धुन्नइ[4]।

एहि दिएण[5] उँद्धार ते पुएण न देक्खओ आन।
रज्ज समप्पओ पुनु करओ[6] कित्तिसिंह सम्मान॥
सिंह परक्कम मानधन[7] वैरुद्धार सुसज्ज।
कित्तिसिंह नहु[8] अंगवइ सत्तु समप्पिअ[9] रज्ज॥

माए जम्पइ अवरु गुरुलोए मन्ति मिरा सिक्खवइ। कबहु एहु नहि[10] कम्म करिअइ। कोहे[11] रज्ज परिहरिअ वप्प वैर निज चित धरिअइ।

लेहेन[12] राए गएनेस[13] गउँ सुरपुर इन्द[14] समाज।
तुह्म सत्तु हि मिरा कए भुञ्जह[15] तिरहुति राज॥

तेतुली वेला[16] मातृ मित्र महाजन्हि करो[17] बोलन्ते हृदयगिरिकन्दरानिद्राण पितृवैरिकेशरी जागु,

---

१ गयणेश राय।

२ तूरुक शा० तुरुक ३ गुणै ४ धिअ सीरा धुणै ५ दूणौ ६ करौ।

७ वीरधण ८ णहि ६ समप्पै १० णा हिण्ह ११ कोह १२ शा० लहेन लहणे १३ गणेश १४ लोय १५ भुजहु।

१६ वेरा १७ महाजन के

अक्षर और इसका समझने वाला कोई भी नहीं रहा, कवि कुल घूम घूम कर भिखारी हो गया। तिरहुति के सब गुण नष्ट हो गए।

राजा को वध करके तुरुक असलान का क्रोध शान्त हुआ, मन ही मन लजाकर वह सोचने लगा, "मैंने बुरा काम किया।" धर्म का स्मरण करके सिर पीटने लगा। "धर्म (दीन) के उद्धार का और कोई पुण्य (कार्य) नहीं दिखाई देता। राज्य समर्पण करूँ और कीर्तिसिंह का आदर सम्मान करूँ।"

सिंह सा पराक्रमी, मानधनी, वैर का बदला लेने में तत्पर कीर्तिसिंह शत्रु द्वारा समर्पित राज्य नहीं अङ्गीकार करता। माता कहती है और गुरुजन, मन्त्री, मित्र शिक्षा देते हैं कभी ऐसा काम न करना। क्रोध से बाप के बैर को चित्त में रखकर राज्य मत छोड़ो।' गणेशराय को लाभ हुआ वह देवलोक में इन्द्र समाज में पहुँचे। "तुम शत्रु को मित्र बनाकर तिरहुति का राज्य भोगो।"

उस समय माता मित्र और और बहुतेरे लोगों के बोलने पर, हृदय रूपी गिरि कन्दरा में सोया हुआ पिता के वैरी का केशरी जाग उठा।

महाराजाधिराज श्रीमत्कीर्तिसिंहदेव कोपि कोपि बोलेए[1] लागु ।

अरे अरे लोगहु, वृथा विस्मृतस्वामिशोकहु, कुटिल-राजनीतिचतुरहु, मोर वचन आकर्णे करहु ।

माता भणइ ममत्तायइ[2] मन्ती रज्जह नीति ।
मज्झु पिआरी एक पइ वीर पुरिस का[3] रीति[4] ॥
मानविहूना भोअना सत्तुक (दे-)जेल राज[5] ।
सरण पइट्ठे जीअना तीनू[6] काअर[7] काज ॥

जो अपमाने दुक्ख न मानइ ।
दानखग्ग को मम्म न जानइ ॥
परउँअआरे धम्म न जोअइ ।
सो धणणो निच्चिरो सोअइ ॥

पर-पुर मारे सओ गहुओ बोलए न जाए किछु धाइ ।
मेरहुँ[8] जेट्ठ गरिट्ठ अछ[9] मन्ति विअक्खन भाए ॥
वैप्प वैरि[10] उद्धरओ[11] न जुग परिवण्णा चुक्कओ[12] ।
संगर साहस करओ ण[11] उण सरणागत मुक्कओ[11] ॥

---

१ बोलवा । २ णमन्त पै शा० मनच्चपइ । ३ कै शा० को । ४ चीनि । ५ शा० शत्तुके देले राज ख० शत्रु के दीन्हे राज । ६ तीनिउ । ७ कायर । ८ मोरहु । ६ जेठ गरिठ है । १० वयर । ११ ख० में सारी क्रियाएँ उद्धरिअ, चुकिअ आदि हैं, प्रथम पुरुष की नहीं । १२ चुक्किअ ।

महाराजाधिराज श्रीमत्कीर्तिसिंहदेव कुपित हो होकर बोलने लगे।

अरे अरे लोगो, स्वामि शोक को वृथा भूल जाने वालो, कुटिल राजनीति में चतुरो, मेरे वचन सुनो—

"मां ममता से बोलती है (अथवा मां कहती है मुझे अच्छा नहीं लगेगा), मन्त्री राजनीति कहता है, परन्तु मुझे तो केवल, वीर पुरुष की रीति प्यारी है। मान बिना भोजन करना शत्रु के दिए हुए राज्य (का उपभोग), शरणागत होकर जीना—यह तीनों कायर के काम हैं।

जो अपमान होने पर दुःख नहीं मानता। जो दान रूपी खड्ग का मर्म नहीं समझता, परोपकार में जो धर्म नहीं देखता वह धन्य है, वह निश्चिन्त होकर सोता है। मैं कुछ ज्यादा नहीं कहता, स्वर शत्रु की पुरी पर आक्रमण कर स्वयं ग्रहण करूँगा। मेरे ज्येष्ठ और गरिष्ठ, और सलाह देने वालों में चतुर भाई हैं।

मैं [illegible] वदला लूँगा किन्तु प्रण से [illegible]
हटूँगा; [illegible] किन्तु शरणागत होकर मुक्त [illegible]
होऊँगा।

दाने दलओ[1] दारिद न उँन नहि अप्खर भासओ[1]।
याने पाट[2] वरु करओ[1] न उँण नीअ सत्ति पआसओ[1] ॥
अभिमान जओ रप्खओ[1] जीवसओ
नीच समाज न करओ[1] रति।
ते रहउँ कि जाउँ कि रज्ज[3] मम
वीरसिंह भण अपन[4] मति ॥
वेवि सम्मत मिलिअ[5] तवे एक, वेवि सहोअर सङ्ग[6],
वेवि पुरिस सव गुण विअप्खन।
णं वलभद्दह[7] कएण णउँण वन्निअउँ[8] राम लप्खन ॥
राअह नन्दन पाओ चलु अइस विधाता भोर।
ता पेप्खन्ते[9] कमण को[10] नअण न लग्गइ[11] नोर[12] ॥
लोअ छत्तिअ[13] अवरु परिवार रज्ज भोग परिहरिअ
र तुरंग परिजन विमुक्किअ, जननि पाओ पन्नविअ, जन्म
भूमि को मोह छोड्डिअ, धनि छोड्डिअ।
धनि छोड्डिअ नवजोव्वना धन छोड्डिओ वहुत्त।
पातिसाह उदेशे चलु गअनगअ को पुत्त ॥

---

१ ख० में सारी क्रियाएँ उद्धरिअ, चुकिअ आदि हैं, प्रथम पुरु
की नहीं। २ क० पानें पाढ, ख पाणि पान। ३ सरीर। ४ अप्पणिअ
५ मिलिअउ। ६ सङ्ग शब्द ख० मे नहीं है। ७ चलेउ बलभद्द।
ख० मे यह शब्द नहीं है। ९ देखन्ते। १० कवन के। ११ लग्गेउ
१२ लोर। १३ शा० छड्डिअ ख० छडिअ।

दान से दारिद्रय का दलन करूँगा किन्तु (याचक से) 'नहीं' न कहूगा; युद्धयात्रा करके कौशल दिखाऊँगा, नीच शक्ति न दिखाऊँगा; अपने अभिमान की रक्षा करके जीते जी नीच जन की सङ्गति न करूँगा; चाहे राज्य रहे चाहे सब लुट जाए। वीरसिंह अपनी राय बताओ।

दोनों की सम्मति हो गई, दोनों सहोदर साथ हो लिए, दोनों पुरुष सब गुण कुशल; क्या दोनों बलराम और कृष्ण थे, अथवा राम लक्ष्मण ? विधाता ऐसा मूढ़ ! राजा के पुत्र पाँव पाँव चले ! उनको देखकर किसकी आँखों में जल नहीं आ गया।

लोक छोड़कर और परिवार राज्य भोग छोड़कर, अच्छे-अच्छे घोड़े और परिजन छोड़कर, माता के चरणों में प्रणाम कर, जन्मभूमि का मोह छोड़कर; नव यौवन गृहणियाँ और बहुत सा धन छोड़कर, गणेशराय के पुत्र बादशाह के उद्देश्य से चले।

वाली[1] छद पाञे चलु हुअओ कुमर[2]
हरि हरि सवे सुमर ।
वहुल छाडल पाटि पाँतरें,
वसने[3] पाञेल आँतरे आँतरे ।
जहाँ जाइअ जेहे गाञो,
भोगाइ रजा क[4] वड्डि नाओ ।
काहुँ[5] कापल[6] काहु[5] घोल,
काहु सम्वुल देल[7] थोल,[8] ।
काहु पाती भेलि पैठि,
काहु सेवक लागु भैठि[9] ।
काहु[5] देल[7] ऋण उद्धार,
काहु[5] करिअउ[10] नदी क[11] पार ।
काहु[5] ओ वहल[12] भार वोझ,
काहु[5] वाट कहल साँझ ।
काहु[5] आतिथ्य[13] विनय करु,
कतेहु दिने[14] वाट सम्तरु ।

---

१ ख० मणावहला छद । २ ख० दुअनु कुणर । ३ वसल । ४ राजा । ५ केहु । ६ कापर । ७ दिहल । ८ थोर । ९ में यह कड़ी नहीं है । १० करअहि । ११ णदी । १२ बल ? १३ त्थ । १४ कतक दिवस ।

वाली छन्द। दोनों कुमार पैदल चले, सब कोई हरि का
स्मरण करने लगे।

बहुत सी पट्टियाँ और प्रान्त छोड़ दिए। बीच २ ठहरते गए।

जहाँ-जहाँ जिस-जिस गाँव जाते थे भोगेशराय का बड़ा
नाम था।

किसी ने कपड़े दिए, किसी ने घोड़े, किसी ने मार्ग के खर्च
के लिए थोड़ी सामग्री दी।

कोई प्रवेश करके पंक्ति में हो लिया कोई सेवक आकर भेंट
करने लगा।

किसी ने ऋण उधार दिया, किसी ने नदी पार करा दी।

किसी ने बोझा भार ढो दिया। किसी ने सीधा रास्ता
बता दिया।

किसी ने अतिथि सत्कार किया और विनती की। (इस
प्रकार) कितने ही दिन में रास्ता कटा।

अवसवो[1] उद्यम[2] लवि यस अवमओ[1] साहस सिद्धि
पुरुस विअक्खण जअलइ[3] तं तं[4] मिलइ समिद्धि ॥
तं सूने पेक्खिअ भूअर मों[5] जौनापुर[6] तसु[7] नाम[8]।
लोअन केरा वल्लहा लच्छी के विसराम[9]।

छन्दः[10]

पेक्खिअउ पट्टन चारु मेपल जओन[11] नीर पपारिआ।
पासान कुट्टिम भीति भीतर चूह उप्पर ढारिआ[12]।
पल्लविअ कुसुमिअ फलिअ उपवन चूअ चम्पक[13] सोहिआ।
मअरन्दपाण विमुद्ध महुअर सद्द मानस मोहिआ।
वकवार, साकम बाँध पोपरि नीक नीक[14] निकेतना।
अतिवहुतभाँति[15] विवट्टवट्टहि[16] भुलेओ वड्डओ चेतना[17]॥
सोपान तोरन यन्त्र[18] जोलन[19] जाल जालेओ पण्डिआ।
धअधवल हरघर सहस पेक्खिअ कनअकलसहि[20] मण्डिआ॥
थलकमलपत्त-पमान नेत्तहि मत्तकुञ्जरगामिनी।
चौहट्ट वट्ट पलट्टि हेरहिं साछ माछहि[21] कामिनी[22]॥

१ अवसो। २ उदिम। ३ मुलल जह जह। ४ तह तह। ५ वर ६ जौया०। ७ जिमु। ८ नाउ। ९ त्रिमगाठ। १० गीतका छन्द ११ जौन। १२ टारिआ। १३ चाम्पय। १४ वकवार पोखरि बा॰ नाकमर्णाक खीर। १५ वद। १६ इहह। १७ उचेतणा। १८ जन्त १९ जोरण २० कलसन्हि। २१ क० मे लिपि लेखक ने सध्य साथहि काट कर यह पाठ लिखा है। श० मे सध्य ही है। २२ ख० मे नही है

अवश्य ही उद्योग में लक्ष्मी वास करती है, अवश्य ही साहस में सिद्धि का निवास है। चतुर पुरुष जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ उसे समृद्धि प्राप्त होती है।

उसी समय एक नगर दिखाई पड़ा, उसका नाम था जोना-पुर। वह आँखों के लिए प्रिय था और सम्पत्ति का विश्राम स्थान था।

यवनपुर देखने में सुन्दर था, नीर प्रक्षालित सुन्दर मेखला से विभूषित था। दीवार में पत्थर का फर्श, भीतर-भीतर जल के बाहर निकल जाने का रास्ता। उपवन फूल, फल, पत्ती से हरा भरा, आम और चम्पक वृक्षों से शोभित। मकरन्दपान करने के कारण मतवाले भौरों की गूँज मन को मोह लेती थी।······ ·········पुष्करिणी और सुन्दर सुन्दर भवन थे। तरह तरह की गली रास्तों में बड़े बड़े भी चेतना भूल जाते थे। सोपानों तोरणों यन्त्रजालों आदि से सुशोभित (?) श्वेत ध्वजायुक्त सुवर्ण कलशों से सुशोभित हजारों शिवालय दिखाई देते थे। स्थल-कमलिनी के पत्ते के समान बड़ी आँखों वाली कामिनियाँ, मतवाले हाथी के समान गतिवाली चौरास्ते पर फिर फिर कर जाते हुए मनुष्यों के झुण्डों को देखती थीं।

कप्पूर कुंकुम गन्ध चामर नअन कज्जल[1] अंबरा
वेवहार मुल्लहिं वणिक विकण कीनि आनहि वव्वरा[2]।
सम्मान दान विवाह उच्छव गीअ नाटक कव्वहीं।
आतिथ्य विनअ विवेक कौतुक समय पेल्लिअ सव्वहीं[3]।
पज्जटइ एवेल्लइ हसइ हेरइ मथ्थ मथ्थहि जाइआ[4]।
मातङ्ग तुङ्ग तुरङ्ग ठट्ठहि उवॉट वट्ट न पाइआ॥

अवरु पुनु[5]। ताहि नगरन्हि[6] करो परिठव ठवेन्ते, शतसंख्य हाट घाट भमन्ते, शाखानगर शृङ्गाटक[7] आक्रीडन्ते, गोपुर, वकहटी[8], वलभी, वीथी अटारी, सोवारी[9] रहट घाट कौसीस प्रकार[10] पुरविन्यास कथा[11] कहओ का, जनि[12] दोसरि अमरावती क अवतार भा।

अवि अवि अ[13]। हाट करेओ प्रथम प्रवेश[14], अष्ट धातु[15] घटना टाङ्गार[16], कँसेरी पसरा कांस्य क्रेङ्कार[17]। प्रचुर पौरजन पद सम्हार सम्हीन्न[18], धनहटा, गोनू,

---

१ कनय कलस। २ ख० मे नही है। ३ सव्वह पेलही। ४ करहि पेलहि हमइ हेरहि लव्न जवह जाइआ। ५ ख० मे यह नहीं है। ६ नगर। ७ शृगाटक। ८ बहरी। ९ सांवरी। १० कौसाशा प्राकार प्रभृति। ११ ख० में 'कथा' नहीं है। १२ जणु। १३ ख० मे नहीं है। १४ प्रथम हाट करे प्रवेश। १५ धातुक। १६ टकार। १७ कसेर क सा र कासेक क्रयकार। १८ पद सभार सभीन शा० समिन्न।

कपूर, केसर, गन्ध, चामर, कागज और कपड़े वणिक लोग व्यवहार मूल्य से बेंचते थे और बर्बर (यवन ? देहाती ?) लोग खरीद ले जाते थे। सब लोग सम्मान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, आतिथ्य, विनय, कौतुक में समय विताते थे। झुण्ड के झुण्ड मनुष्य घूमते थे, खेलते थे, हँसते थे, देखते थे और साथ साथ चले जाते थे। हाथी और ऊँचे ऊँचे घोड़ों के बीच रास्ता नहीं मिलता था।

और भी। उन नगरों में गए (?), सैकड़ों घाट हाट में भ्रमण करते, नगर के आस पास के नगरों के चौराहों की सैर करते, फाटक...छज्जे, गलियों, अटारियों सवारियों रहट और घाटों (को देखते थे) नगर की सजावट की कथा क्या कहूँ, ऐसा जान पड़ता था जैसे दूसरी अमरावती (इन्द्रपुरी) का अवतार हुआ हो।

और भी और भी। आठों धातुओं से बनते हुए सामान की टंकार बाजार में प्रवेश करने पर ही जान पड़ती थी। कहीं कसेरा फैला है तो कहीं काँसा विक रहा है। बहुत बहुत नगरवासियों के चलने से खचाखच भरे हुए सराफा, सोने का बाजार

हटा, पुनहटा, पकानहटा[1], मछहटा[2] करेओ[3] सुख रव कथा[4] कहन्ते, होइअ झूठ, जनि गम्भीर गुगुरावर्त कल्लोल कोलाहल कान भरन्ते[5], मर्यादा छाडि महार्णव उँठ।

मध्यान्हे करी वेला [संमर्द साज[6] सकल पृथ्वीचक्र[7] करेओ[8] वस्तु[9] विकाएँ आएवाज[10]। मानुस क[11] मीमि पामि वर आँगे ओँग[12], उँगर आनक तिलक आनकाँ लाग। यात्राहृतह[13] परस्त्रोक वलया[14] भाँग। ब्राह्मण क यज्ञोपवीत चाण्डाल हृदय लूल[15], वेश्यान्हि करो[16] पयोधर जटीक[17] हृदय चूर। घने सञ्चर घोल[18] हाथि, वहुत[19] वापुर चूरि जाथि। आवर्त विवर्त रोलहो[20], नअर नहि नर समुद्र[21] ओ॥

वहुले भाँति वणिजार हाट हिण्डए जवे आवथि।

[खने एके सवे विकणथि[22]] सवे[23] किछु किनइते पावथि।

---

१ ख० मे इसके उपरान्त 'दमहटा' और है। २ ख० मे इसके उपरान्त कपरहटा, 'मसुआपटा' और है। ३ करो। ४ बोल। ५ ख० में 'होइअ . भरन्ते' इतना पाठ नहीं है। ६ संमर्द साज के स्थान मे 'महामाम असमर्द वाज'। ७ ख० में 'चक्र' नहीं है। ८ करे। ९ क० वस्त्र ख० वत्तु। १० विकाइवा काज। ११ करो। १२ विआग आग वर। १३ पात्रहुते। १४ वलय। १५ चाण्डाल के आगल्ह। १६ वेश्या के। १७ जतो के। १८ घोर। १९ अनेक। २० रोर हो। २१ क० और शा० मे 'समु' ही है। २२ वहुले...से यहाँ तक पाठ ख० में नहीं है। २३ सवे।

पान का बाजार पकवान की दूकानें, मछली बाजार इन सबसे (उठे हुए) सुख देने वाले कोलाहल की कथा कही जाए तो झूठ होगी। मानो गुर्गुरावर्तक (?) की लहरों के कलकलनाद से कान भर रहे थे। मानों मर्यादा छोड़कर महासागर उठ आया हो।

दोपहर के समय की भीड़ ! मानों सारे भूमंडल की चीजें आज बिकने आई हों। मनुष्यों का सिर सिर से टकराता था। एक के सिर का तिलक छुट कर दूसरे के लगता था। चलते समय पर स्त्री की चूड़ी टूट जाती थी। ब्राह्मण का जनेऊ चंडाल के हृदय में लगता था और वेश्याओं के पयोधरों से यतियों के हृदय चूर होते थे। घोड़े हाथियों की खूब भीड़ थी। कोई कोई बेचारे तो पिस जाते थे। लौटने फिरने के शोर से ऐसा जान पड़ता था कि यह नगर नहीं नर-समुद्र है। बनजारा भाँति भाँति से जब बाजार में घूमने आता था, एक छिन में सब बेच जाता था। सब कोई कुछ न कुछ खरीद कर लेता था।

सब दिसँ पसरु पसार रूप जोव्वण[1] गुणे आगरि।
वानिनि वीथी मॉडि वइस सए सहँसहि नागरि॥
सम्भाषण किछु वेआज कइ[2] तासओ[3] कहिनी सव्व कह।
विक्कणइ वेसाहइ[4] अप्पु सुखे डिठि कुतूहल लाभ रह[5]॥
— सव्वउँ केरा रिज[6] नेअल तरुणी हेरहि वङ्क।
चोरी पेम पिआरिओ अपने[7] दोस सशङ्क॥
बहुल वम्हण[8] बहुल काअथ[9]— राजपुत्तकुल बहुल
बहुल जाति मिलि वइस[10] चप्परि,— सव्वे सुअन सवे
सधन णअर[11] राअ सवे नअर उप्परि। —
जंसवे[12] मन्दिर· देहली[13] धनि पेक्खिअ[14] सानन्द।
तसु[15] केरा मुख मण्डलहि[16] घरे घरे[17] उगहि[18] चन्द॥
—एक हाट करेओ ओल,[19] ओकी हाट करेओ
कोल[20]। राजपथ क[21] सन्निधान सञ्चरन्ते[22] अनेक
देखिअ[23] वेश्यान्हि करो[24] निवास[25], जन्हि के[26] निर्माणे
विश्वकर्महु भेल वड[27] प्रआस।

१ यौवन। २ कित्तर विआजकरी। ३ •उन्हसे। ४ विक्कणिअ वेश्याहि। ५ डिठि कुतोहर लभ्य वरह। ६ सव्वोटु के वारिजु शा० सव्वउँ केरा वारिज। ७ उपने। ८ वभण। ६ कायस्थ। १० वैसु। ११ नयन। १२ जसह। १३ देहरित्र। १४ लेखिअ। १५ तिसु। १६ ह १७ घर घर। १८ उगिगम। १६ एक हाट के ओर। २० ओका हाट के कोर। २१ के। २२ यह ख० में नहीं है। २३ देहिअहि। २४ वेश्याहक। २५ नेवास। २६ जे करे। २७ वड़ि।

सब दिशाओं में फैलाव फैला था। रूपवती, युवती, नागरी गुणागरी वनितियाँ गलियों में सैकड़ों सखियों के साथ बैठी थीं।

सब कोई कुछ न कुछ बहाना करके उनसे बातचीत करता था, कहानी कहता था। सुख से बेचता खरीदता था, दृष्टि कुतूहल लाभ (घाते) में रह जाता था। सब ही की सीधी सादी आँखें इन युवतियों को तिरछी दिखाई देती थीं—चोरी से प्रेम करने वाली प्रेयसियाँ अपने ही दोष से सशंक रहती हैं।

बहुत ब्राह्मण, बहुतेरे कायस्थ, बहुत से राजपूत (इत्यादि) बहुत सी जातियाँ मिल कर ठसाठस बैठी थीं। सभी सज्जन, सभी धनवान। नगर का राजा अब नगर के ऊपर था। जैसे घर की देहली पर धनी को देखकर सभी सानन्द होते हैं उसी प्रकार उसके (नगर के राजा के) मुख मंडल को देखकर घर घर ऐसा मालूम होता है जैसे चन्द्रमा उदित हुआ हो।

एक बाजार समाप्त हुई नहीं कि दूसरी प्रारम्भ हो गई (?)। राजपथ के निकट चलने पर वेश्याओं के अनेक घर दिखाई पड़ते थे जिनके बनाने में विश्वकर्मा को भी बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा।

अवरु वैचित्री कहओ का जन्हि केस-धूप-धूम करी रेखाभ्रुवहु उँप्पर जा[1]/काहू काहु अइसेनओ सङ्गत करे काजरे चान्द कलङ्क[2]। लज्ज कित्तिम कपट तारुन्न। धन निमित्ते धर पेम, लोभे[3] विनअ, सौभागे कामन। विनु स्वामी सिन्दूर परा परिचय अपामन[4]।
-जं गुणमन्ता[5] अलहना[6] गौरव लहइ[7] भुअङ्ग[8]।
वेसा मन्दिर धुअ[9] वसइ[10] धुत्ताह रुअ अनङ्ग[11]॥

तान्हि वैश्याह्नि करो[12] सुख सार मण्डन्ते[13] अलक तिलका[14] पत्रावली खण्डन्ते[15], दिव्याम्बर पिन्धन्ते[16], उभारि उभारि केश पाश वन्धन्ते[17], सखिजन भरन्ते, हँसि हेरन्ते, सआनी, लारुमी[18], पातरी[19] पतोहरी, तरुणी, तरड्डी[20], वन्ही[21] विअप्खणी परिहास पेपणी[22] सुन्दरी सार्थ जवे देखिअ[23] तवे मन करे तेसरा लागि तीनू उपेप्खिअ[24]।

---

१ केशध्वज धूम करो रेखा भ्रुव उपर ज। २ काहू २ अेसनौ सकओ करा काजर चाँद कलक। ३ लोह। ४ सोइ जा कमिणिविनु सामि सेंदूर परम रस॥ परिअण अपावणी॥। ५ धणवरा। ६ अलह-नेउ। ७ लहहिं। ८ क० तुअंग। ६ क० धूअ। १० वशहि। ११ धूत सरुअअनङ्ग॥ १२ ताहि वेश्यागारहि। १३ मण्डले। १४ तिलक। १५ खण्डले। १६ पन्यन्ते। १७ उभारि - बन्धन्ते' ख० मे नहीं है। १८ शा० लानुमी ख० लोनी। १६ पातली। २० तरंदी। २१ शा० वेन्ही ख० वेर्ली। २२ पेतली। २३ साथ जब देखिअहि। २४ चारि पुरुपार्थ तिसरा लगि उपेखिअहि।

और विचित्रता क्या वर्णन करूँ उन (वेश्याओं) की धूप धूमलेखा रूपी केश छटा ध्रुव के भी ऊपर जाती थी। कोई कोई ऐसी भी (अर्थ) सङ्गति करते थे कि उनके काजल के कारण चन्द्रमा में कलङ्क है। उनकी लाज बनावटी, जवानी छल की। धन के लिए प्रेम करें, लोभ के लिए विनय, सोहाग की कामना। स्वामी के विना भी सिन्दूर का खूब अनुराग। कितना अपावन !

जहाँ गुणी पुरुष कुछ नहीं पाते (उनकी कोई पूछ नहीं, प्रत्युत), जार पुरुष गौरव प्राप्त करते हैं। निश्चय ही वेश्या के घर में कामदेव धूर्त के रूप में वास करते हैं।

वे वेश्याएँ जब सुख का मंडन करतीं, केश रचना करतीं, तिलक और पत्रावली कतरकर लगातीं, सुन्दर दिव्य वस्त्र पहनतीं, केश उठा उठा कर बाँधतीं, सखियों को छेड़तीं, हँस कर देखतीं तब सयानी, लोनी, पातुरी, पतोहरी (पुत्रवधू), युवती, चञ्चल नवेली, चतुर, हँसी ठट्ठा में कुशल सुन्दरी गण को देखकर मन में ऐसा होता था कि तीसरे (पुरुषार्थ अर्थात् काम) के लिए और तीनों (धर्म अर्थ मोक्ष) को छोड़ दें।

तन्हि[1] केस कुसुम वस, जनि[2] मान्यजनक लज्जावलंबित[3] मुखचन्द्रचन्द्रिका करी अधओगति[4] देखि अन्धकार हँस। नअनाञ्चल[5] सञ्चारें भ्रूलताभङ्ग, जनि[6] कज्जलकल्लोलिनी करी[7] वीचीविवर्त वड़ी वड़ी शफरी तरङ्ग[8]। अति सूक्ष्म सिंदूर रेखा निन्दन्ते पाप, जनि[9] पञ्चशर करो[10] पहिल प्रताप। दोखे हीनि, माझ खीनि। रसिके आनलि[11] जओं जीति, पयोधर के भेर[12] भागए चेह[13]। नेत्रक रीति तीय भागे तीनु भुवन माह[14]। ससरें वाज राअन्हि छाज[15] काह्नु होअ अइसनो ओसुं कइसे लागत आचर वताम[16]।

तान्हि करी[17] कुटिल कटाक्षछटा[18] कन्दर्पशर-श्रेणी जओ[19] नागरन्हि कों[19] मन गाड, गो वोलि गमारन्हि[20] छाड।

१ तिन्ह। २ जनु। ३ लज्जविराचित। ४ अधोगत। ५ रायनाजनेक। ६ भ्रूलता क भंजै गेणु। ७ ख० में 'करी' नहीं है। ८ सफरी करो तरङ्ग। ६ जयु। १० को। ११ आरा। १२ पयोधर करे भार। १३ भागे चाह। १४ णेत्र करे त्रितिअ भाग भुअण साह। १५ सुशर वाज रायह्न छाज। १६ अनेकह्नो अैसनउ आसनी आस कैसह्नु लागिहि आचर क्वर तास। १७ जे करे। १८ छटे। १६ संद-र्प कन्दर्प सरस्त्रेनीर। १६ के। २० गवारहि।

उनके केशों में फूल लगे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता हो कि माननीय लोगों के लज्जावनत मुखचन्द्र की चन्द्रिका की अधोगति देख कर अन्धकार हँस रहा हो। नयनाञ्चल के संचार होने पर भ्रूलता में भङ्ग होता था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कज्जल नदी की लहरों की भँवर में बड़ी बड़ी मछलियाँ डोलती हों। पाप की निन्दा करने वाली सिन्दूर की लेखा बड़ी सूक्ष्म थी, मानों कामदेव का प्रथम प्रताप हो। दोषहीन, क्षीण मध्य मानो रसिकों से जुआँ में जीत कर लाई गई हो और पयोधर के भार से भागना चाहती हो। नेत्र अपने तीन (श्वेत, कृष्ण, रक्त) भागों से अपने को त्रिलोकी का शासक समझता था। राजों का साज (?) अच्छी तरह बजाता था। किसी किसी के मन में ऐसा होता था कि किस प्रकार अञ्चल की हवा लगे।

उनकी कुटिल कटाक्ष छटा ही कामदेव के वाणों की श्रेणी थी जो दोहाई बोलने पर गँवारों को छोड़कर सब नागरिकों के मन में गड़ जाती थी।

सव्वउँ नारि विअप्खनी सव्वउ सुस्थित[1] लोक।
सिरि इमराहिमसाह[2] गुणे नहि चिन्ता नहि शोक॥
सब तमु हेरि सुहित होअ लोअण।
सब तहुँ मिलए सुठाम सुभोअण॥
खन एक मन दए सुनओ विअप्खण।
किछु बोलओ तुरुकाणओ लप्खण॥
छन्दः (ख० भुजंगप्रयात छन्दः)
ततो[3] वे कुमारो पइट्ठ[4] वजारी,
जहिँ[5] लप्ख घोरा मअंगा हजारी[6]
कहीं कोटि गन्दा कहीं वांदि वन्दा[7]
कहीं दूर रिकाविए[8] हिन्दु गन्दा
तही[9] तथ्थ[10] कूजा तवेल्ला[11] पसारा,
कहीं तीर कम्माण दोकाणदारा
सराफे सराहे[12] भरे वे वि[13] वाजू,
तौलन्मि[14] हेरा[15] लहूलो[16] पेआजू
परीदे परीदे[17] वहूता गुलामो[18],
तुरुकँ तुरुकें[19] अनेको[20] सलामो

१ सुथिर। २ मिरी इमराहिममाहि। ३ तदो। ४ वइटो। ५ कहं ६ हयारो। ७ कही वैट थदा कही वोट विंदा। ८ कहीं दूर निकारिआ ६ कहीं। १० तस्य। ११ तवीला। १२ ख० सरावे सरावे, शा० सरा सराफ़ें। १३ लखै। १४ तउलच। १५ शा० फेरा १६ लमुसा। १७ वहूच १८ गुलावो। १६ शा० तुरुक्को तुरुक्के, ख० तुरुकैंर तुरुकैर। २० अलेक।

सब ही नारियाँ चतुर थीं, सभी मनुष्य सुखी थे। श्री इब्राहीम शाह के गुण से न चिन्ता थी न शोक। यह सब देखकर आँखें सुखी होती थीं, वहाँ सब कहीं अच्छा भोजन और अच्छा ठहरने का स्थान था। चतुर पाठकगण, छिन भर मन लगाकर सुनिए अब कुछ लक्षण तुर्कों के कहूँगा।

इसके बाद, दोनों कुमार बाजार में घुसे जहाँ लाखों घोड़े और हजारों हाथी थे। कहीं करोड़ों गुंडे (?) कहीं बाँदी बंदे, कहीं गन्दे हिन्दू बाहर किए जाते थे। वहाँ कहीं कूजा (प्याला) और तबेलों का फैलाव था कहीं तीर कमान के दुकानदार थे। दोनों ओर सराफे की दुकानें थीं लहसुन प्याज तौला जा रहा था। बहुत से गुलाम खरीदने आते थे, मुसलमानों में आपस में खूब सलामें होती थीं।

(१८४२४३५)

वसाहन्ति[१] पीमा मैइजल्ल[२] मोजा,
भमे मीर[३] वल्लीअ सइल्लार[४] पोजा ॥
अवे वे भणंता मराक्षा पियन्ता[५],
कलीमा कहन्ता कलामे जीअन्ता[६] ।
[७]केसीदा कढ़न्ता[७] ममीदा भरन्ता,
कितेवा[८] पढ़न्ता तुरुका अनन्ता ॥
अति गह सुमर[९] पोदाए पाए ले भाँग क गुण्डा ।
विनु कारणहि[१०] कोहाए[११] वएनै तातल तमुकुण्डा[१२] ॥
तुरुक तोपारहिं चलल हाट भमि हेडा मंगइ[१३] ।
आडी डीठि निहारि दवलि[१४] दाढी[१५] थुकबाहइ ॥
सब्बस्स सुराय पराव कइ ततत कयाघा दरम[१६] ।
अविवेक करीवा कहओ को, पाछा पएदा लेले भम[१७] ॥
जमण[१८] खाइ ले भांग मांग, रिसिआइ खाण हे ।
दौरि धीरि जिउ धरिइ समिण सालण अणै भणै ॥

---

१ वीसाखंच । २ पइजल्ल । ३ क० सीर । ४ सेलार । ५ विअन्ता ६ कलामे जियन्ता कलीमा पढन्ता । ७ कढन्ता । ८ कतेवा । ९ सुमरि १० कारणन्ह । ११ रिसाइ । १२ तवकुडा । १३ हाट—भै हेरा चाहै । १४ दवरि । १५ दारढी । १६ के—तन कइत खा यादि रम । १७ अवियेका कवि करइ का, कय दाया क्षेलेइ भम (स्याही उड़ जाने से पाठ अस्पष्ट है) १८ ख० में यह पद्य और है जो स्याही के उड़ जाने से कुछ अस्पष्ट है ।

बटुए, पाजेब (?) और मोजा मोल लिए जा रहे थे। मीर, वली, सालार और ख्वाजा घूमते फिरते थे। अनन्त तुरुक थे। कोई अवेन्धे कहते थे, शराब पीते जाते थे, कोई कलमा पढ़ते थे, करीमा कहते थे, कोई कसीदा काढ़ते थे, कोई मसीद भरते थे; कोई कोई किताबें पढ़ते थे। (वहाँ) अनगिनती मुसलमान थे।

बड़ी श्रद्धा से खुदा की याद करके, भाँग को गोला खा लेता है। बिना कारण ही नाराज हो जाता है। कड़े वचन कहता है। मुख तप्त ताम्रकुण्ड के समान हो जाता है। तुरुक तोखार (?) को चला तो बाजार में घूम घूम कर देख देख कर (?) माँगता है। आड़ी नजर से देखकर दौड़ कर दाढ़ी में थुकवाता है (?)

सर्वस्व शराब में बरबाद करके गरमागरम कबाब खाता है (?); उसके अविवेक की बात क्या कहूँ प्यादा ले कर पीछे घूमता है।

खान जब माँगकर भाँग खा लेता है, तभी गुस्सा होता है। दौड़ कर 'कलेजा चीर लूँगा जल्दी सालन लाओ' ऐसा कहता है।

पहिल नेवाला खाइ जाइ मुहु भीतर जबही।
खण यक चुप भै रहइ गारी गाइ दे तब ही॥
ताकी रहै तसु तीर लेइ बैठाव मुकदेम बाँहि पै।
जौ आनिञ आन कपूर सम तबहु पिआजु पिआजु पै॥
गीति-गरुवि जापरी मत्त भए मतरुफ गावइ[1]।
चरप नाच तुरुकिनी[2] आन किछु काहु न भावइ॥
सअद[3] सेरणी[4] विलह सव्व को[5] जूठ सव्वे पा।
छुआ[6] दे दरवेस पाव नहि गारि पारि जा॥
मपईम नरावइ[7] दोम[8] जओ[9] हाथ ददूस दस दारओ[10]
पुन्दकारी[11] हुकुमकहओ[12] का अपनेओ[13] जोएपरारिहा[14]
किञ[15]

:—हीन्दू तुरके मिलल[16] वास,
एकक धम्मे अओका[17] उपहास[18];
कतहु[19] वाँग कतहु[19] वेद,
कतहु[19] मिमिमिल[20] कतहु[19] छेद;
कतहु[19] ओझा[21] कतहु[19] षोज़ा,
कतहु[19] नकृत[22] कतहु[19] रोज़ा;

१ गी रग रजा करिअ मत्त भै मुतुरुक गावहि। २ तुरुकुनिअ
३ सइद। ४ सिरणि। ५ कर। ६ दूआ। ७ लगावै। ८ द्दूग
जइ। १० गारओ। ११ खोदकादीक। १२ हुकुम—अब कहे
३ अपा किउ। १४ हो। १५ ख० मे नहीं है। १६ तुरुक मिललइ। १
तेकाक। १८ हास। १९ फहहु। २० विशिमिल। २१ वोझा। २२ नखत

पहला ग्रास जब मुख में जाता है तब एक छिन चुप होकर रहता है और तब 'गांडू' गाली देता है। उसको तीर लेकर ताकता है। मखदूम बाँह पकड़कर बैठाता है। यदि कपूर के समान (सुगन्धित) भोजन लाइए तब भी प्याज प्याज ही चिल्लाता है।

गाने में चतुर आखरी (नटिनी) मस्त होकर गाना गाती है। तुरकिन 'चरख' नाच नाचती है और कुछ किसी को अच्छा नहीं लगता। सय्यद, स्वैरिणी (बदचलन स्त्री) और फकीर (?) सभी हर एक का जूठा खाते हैं। दरवेश दुआ देता है, परन्तु जब कुछ नहीं पाता तब गाली देकर चला जाता है। मखदूम डोम की तरह दसों दिशाओं से हाथ में भोजन ले आता है (?) काजी के हुक्म की बात क्या कहूँ ? अपनी स्त्री पराई हो जाती है॥

किन्तु हिन्दू और मुसलमान दोनों के मिलकर रहने में, एक के धर्म से दूसरे का उपहास होता है। कहीं अजाँ की बाँग कहीं वेद का पाठ, कहीं बिस्मिल्ला, कहीं (कर्ण ?) छेद, कहीं ओझा कहीं ख्वाजा, कहीं नक्त व्रत कहीं रोज़ा,

कतहु तम्बारु कतहु कूजा,
कतहु नीमाज कतहु पूजा[1];
कतहु[2] तुरुक वरकइ,
वॉट जाइते वेगार[3] धर।
धरि आनए[4] वाँभन वटुआ[5],
मथाँ चडावए[6] गाइक चुडुआ[7]।
फोट चाट जनउ तोड,
उपर चडावए[8] चाह घोर।
धोआउरि[9] धाने मदिरा साँध[10],
देउर भाँगि[11] मसीद बाँध[12]।
गोरि गोमक पुरिल मही,
पएरहु[13] देना[14] एक ठाम[15] नहीं।
हिन्दु बोलि दुरहि निकार[16],
छोटओ तुरका भभकी मार॥
हिन्दुहि गोटओ गिलिए हल[17] तुरुक देखि होअ[18] भान।
अइसेओ[19] तँसु[20] परतापे रह[21] चिरे जीवत[22] सुरु तान।

१ यह कड़ी ख० मे नहीं है। २ कहहु। ३ जात वेगारि। ४ आणे ५ वरुअ। ६ चह्लावै। ७ चरुआ। ८ जणेव तोर। ९ धुआवरी १० साधीअ। ११ फोरि। १२ वाधिअ। १३ पयरउ। १४ धरइ १५ ठाउ। १६ हांदु रोटेहु का। (?) १७ ओ हिन्दु बोलि गिरि चढै १८ देषि हो। १९ अइसो। २० जस। २१ है। २२ जीअउ।

कहीं तम्बा (लोटा) कहीं कूजा: कहीं नमाज कहीं पूजा, कहीं कोई [मुसल्मान जबर्दस्ती रास्ता जाते हुए को बेगार में पकड़ लेता है। ब्राह्मण के लड़के को पकड़ लाता है और उसके मत्थे पर गाय का बच्चा चढ़ाता है। मस्तक का टीका चाटता है, जनेऊ तोड़ लेता है और ऊपर घोड़ा चढ़ाना चाहता है। विशेष (धोए हुए ?) धान से मदिरा बनाता है और मन्दिर तोड़ कर मसीद (मस्जिद) बनाता है। कबरों और गोमठ (? गोशाला) से पृथ्वी भर गई। पैर रखने का भी स्थान नहीं। हिंदू को बुलाकर दुरकार कर निकाल देता है। छोटा भी मुसल्मान भभक कर गुस्सा होकर) दौड़ कर मारता है।

तुर्कों को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो वे हिन्दुओं के समूह को निगल जाएँगे। ऐसा भी सुल्तान का प्रताप रहे, वे चिरकाल तक जीवित रहे।

हट्टहि[1] हट्ट भमन्तश्रो[2] दूश्रश्रो[3] राज कुमार।
दिट्ठि कुतूहल[4] कज्ज रस[5] तो पइट्ठ[6] दरवार॥

(पद्मावती) छंदः

लोअह सम्मद्दे बहु विरहद्दे,
अम्बर मण्डल पूरीआ।
आवन्त[7] तुरुका पाण[8] मूलुका,
पअ भरे पथर चूरीआ॥
दुरुहुन्ते[9] आआ वड वड राआ,
दवलि दोआरहीं[10] चारीआ[11]।
चाहन्ते छाहर[12] आवहि बाहर,
गालिम गणए ण पारीआ॥
सब सइअदगारे विथ्थरि थारे[13],
पुहविए[14] पाला आवन्ता।
दरबार बइट्ठे दिवस भइट्ठे,
वरिसहु[15] भेट्ट[16] न पावन्ता॥
उत्तम[17] परिवारा पाण उमारा,
महल मजेदे जानन्ता[18]।

---

१ हट्टह। २ भवन्तश्रो। ३ दूथी। ४ डीठि कुतोहर। ५ लभ्य हरे। ६ तौ पइठे। ७ अवथि। ८ मलिक। ६ ने दुरुहुति। १० दुआरे। ११ वारिश्रा। चादर। १३ वीथवी थारे। १४ पुहमी। १५ वरिसन्हि। १६ भेंट। १७ उत्तमि। १८ जे जहि मलम जागता।

दोनों राजकुमार (इस प्रकार) देखने के कुतूहल से बाजार बाजार घूमते रहे फिर काम के लिए दरबार में प्रवेश किया।

(वहां) आकाशमंडल भाँति भाँति के घूमते हुए लोगों के झुंडों से भरा हुआ था। आते हुए तुर्कों, खानों (मालिकों) मुलुकों के पाद भार से पत्थर चूर्ण हो रहा था। दूर दूर से आए हुए बड़े बड़े राजा लोग दौड़कर द्वार घेर लेते थे। छाया चाहते बाहर आ जाते, गालिम (?) गिने नहीं जा सकते। आए हुए पृथ्वीपाल फैल फैल कर सय्यद के घरों (?) पर खड़े थे। दरबार में बैठे हुए दिन बीत जाता था, साल भर भेंट नहीं पाते थे। उत्तम परिवार के खान और अमीर लोग महल के मजे (?) जानते थे,

सुरतान सलामे, लहिअ इलामे[1],
आपें रहि रहि[2] आवन्ता ॥
साअर गिरि अन्तर दीप दिगन्तर[3],
जासु निमित्ते जाइआ।
सव्वओ वट्टराना[4], राउत, राणा
तथ्थि दोआरहिं पाइआ[5] ॥
इअ रहहि[6] गणन्ता विरुद भणन्ता,
भट्टा ठट्टा पेख्खीआ[7]।
आवन्ता जन्ता कज्ज[8] करन्ता,
मानव कमने[9] लेख्खीआ ॥
तेलंगा वंगा चोल[10] कलिंगा,
राआ पुत्ते[11] मण्डीआ।
निअ भासा जप्पइ साहस[12] कम्पइ,
जइ सुरा जइ[13] पण्डीआ ॥
राउत्ता पुत्ता चलए[14] बहुत्ता अतरे पटरे सोहन्ता।
संगाम सुहव्वा[15] जनि गन्धव्वा रुऐ[16] पर मन मोहन्ता।

१ लहिअै माने। २ उठि। ३ दीगन्तर। ४ बदुराना। ५ तथि दुआरे पारिआ। ६ रहि को। ७ देखीआ। ८ आरंता जाता काज। ९ कवणे। १० चोर। ११ रायन्ह इनि। १२ साधम। १३ तता सूरायन्ह। १४ भवहि। १५ सुभंवा। १६ रूपे।

सुल्तान को सलाम करने से इनाम पाकर, आप ही आप ठहर ठहर कर आते थे। सागर और पर्वत के उस पार से द्वीप द्वीपान्तर से जिस पुरुष के निमित्त आए थे उसके दर्वाजे पर सब राजा, राजपुत्र इकट्ठा थे। यहां मालिक का ठाट बाट देखकर, स्तुति करते थे और गुण गिनते थे। आते जाते हुए काम करते हुए मनुष्यों की गिनती किस प्रकार हो सकती थी? सुशोभित तैलंग, बंगाली, चोल और कलिंगदेशी राजा और राजपुत्र अपनी भाषा बोलते थे, भय से काँपते थे और जय वीरवर जय पण्डित कहते थे। बहुत से सुशोभित राजपुत्र इधर उधर घूमते थे, संग्राम में पटु गन्धर्व के समान रूप से मन मोह लेते थे।

ओहु पास दरवार सएल' मँहि महि मण्डल उप्परि।
उथ्थि अपन वेवहार राङ्क ओ राअहु उप्परि॥
उथ्थि सत्तु उथि मित्त उथ्थि सिर नवइ सव्व कइ।
उत्थि साति परसाद उत्थि भए जाए भव्व कइ[2]॥

निअ भाग अभाग विभाग वल,
ओ ठमाहिं जानिअ सव्व गए[3]।
एहु पातिसाह सअ लोअ उप्परि,
तसु उप्परि करताल पए[4]॥

अहो अहो आश्चर्य, ताहि दोपालन्हि करो दिवाल दरवाल ओ नेआन दरवार मेआरो दर सदर दरिगह[5] वारिगह निमाजगह[6] पोआरगह[7] पोरम गुह करेओ[8] चित[9] चमत्कार देपंते सब वोल भल। जनि[10] अद्य पर्यंत विश्वकर्मा एही[11] कार्य[12] छल। ताहि प्रासादन्हि करो[13] वज्रमणि-घटित काञ्चन कलश छाज।

वह दरबारखास सारी पृथ्वी के ऊपर था। वहाँ गरीब भी राजा के ऊपर अपना व्यवहार करता था। वहां शत्रु, मित्र सब का सिर झुकता था, वहाँ शान्ति और प्रसाद था, वहाँ सांसारिक भय जाता रहता था। वहां जाकर सब कोई अपने भाग्य अभाग्य के भाग धन्न को जान जाता था। यह बादशाह सब लोगों के ऊपर था, उसके ऊपर केवल भगवान थे।

अहो अहो आश्चर्य! उन दोनों ने उस दरबार (की दीवार पर ?) में पदार्पण किया, जिस दरबार के बीच के दर्वाजे पर सदर दरगाह, जल रखने का घर, नमान घर, खोआर (भोजन ?) घर, पोरस (?) घर,—इन सब का चमत्कार देखकर सब बोलते थे—बहुत अच्छा है। मानो आज तक विश्वकर्मा इसी कार्य में लगे रहे (?)। उन महलों में वज्रमणि (हीरा) जड़े हुए सोने के कलश शोभित थे।

जन्हि करो माथे सूर्य्य रथ वहल पर्य(ट)न्त[1] सात घोला करो अट्ठाइसओ टाप बाज। प्रमदवन[2], पुष्पवाटिका, कृत्तिमनदी, क्रीडाशैल, धारागृह, यन्त्रव्यजन शृंगार[3]- संकेत, माधवी - मंडप, विश्रामचौरा चित्र शाली खट्वा[4] हिंडोल कुसुम-शय्या[5] प्रदीप-माणिक्य चन्द्रकान्त-शिला चतुस्सम पल्लव करो परमार्थ पुच्छहि मिश्रान एवाय अभ्यन्तर करी वार्ता के जान[6]। एम पेक्खिअ दूर दापोल, महुत्त विस्समिअ[7] सिङ्ग पदिक परिट्ठिए अपमानिअ[8], गुणे अनुरञ्जिअ लोगें सव्व महल को मम्म[9] जनिअ।

सगुण मआणा पुच्छिअउँ तँ[10] पल्लविअउँ आस।
तोउ असंभहि मज्जुपुर[11] विप्पवरहिं करु[12] वास॥

---

१ जे करे माथे सूर्य प्रर्जटन कर रथ बल व्यासक्त। २ प्रमोदवन। ३ श्रि०। ४ निद्रा। ५ सज्जा। ६ (पल्लव करो पुरुषार्थ इसि पुछि आण एवाप अभ्यन्तरी करी वार्ता कवण जाण।) ७ निस्समिश्रै। ८ परिश्रण पमानिश्र। ९ रहस। १० पुच्छिश्रै जे। ११ तहहु असध्या मज्झपुर। १२ लिहु।

जिनके मस्तक पर सूर्य के रथ को लेकर चक्कर काटते हुये सातों घोड़ों की अट्ठाइस टापें बजती थीं। प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिम नदी, क्रीडाशैल धारागृह (फव्वारा), यन्त्रव्यजन, शृंगार का संकेत माधवीमंडप, विश्राम को दूर करने वाली चित्रशाली खटवा, हिंडोला, फूलों की सेज, प्रदीप-माणिक्य, चन्द्रकान्तशिला, चौकोन तालाब (?) का सच्चा हाल सयानों से पूँछ कर जान लिया (?)। अन्दर की बात कौन जाने! इस प्रकार दूर तक आकर और देखकर, क्षण भर विश्राम करके, शिष्ट लोगों के परिजन का आदर करके, लोगों को गुण से प्रसन्न करके, महल का मर्म जान लिया।

सगुण चतुर लोगों से पूँछने पर, आशा पल्लवित हुई। फिर सन्ध्या होने के पहले ही नगर के मध्य एक ब्राह्मण के घर बास किया।

सीदत्प्रत्यर्थिकान्तामुखमलिनरुचां वीक्षणैः पङ्कजानां,
त्यागैर्बद्धाञ्जलीनां[1] तरणिपरिचितैर्भक्तिसम्पादितानां।
अन्यद्वाराकृतार्थद्विजनिकरकरस्थूलभिक्षाप्रदानैः,
कुर्वन् सन्ध्यामसन्ध्यां चिरमवतु महीं कीर्ति[2] सिंहो नरेन्द्रः[3]।

इति श्रीमट्ठक्कुरश्रीविद्यापतिविरचितायां कीर्तिलतायां द्वितीयः पल्लवः॥

---

१ अथाजलाना। २ किर्च! महिन्द्रः ख० मे इस पद्य का पाठ महा अशुद्ध है।

दुःख को प्राप्त हुए वैरियों की प्रेयसियों की मलिन मुखकान्ति के समान कान्ति वाले कमलों को देखने से, तथा मुकुलित और भक्ति से समर्पित उन्हीं उन्हीं कमलों को सूर्य पूजा के निमित्त (नदी में) छोड़ने से, और दूसरे के द्वार पर अंकतार्थ आह्वान वर्ग के हाथों में बड़ी बड़ी भिक्षा देने से असन्ध्या को सन्ध्या करते हुए श्री राजा कीर्तिसिंह बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा करते रहें।

इति श्रीमट्ठकुर श्री विद्यापति की रची हुई कीर्तिलता में द्वितीय पल्लव समाप्त हुआ।

(तृतीय पल्लव)

अथ भृङ्गी पुनः पृच्छति ।

कएण[1] समाइअ अमिअ रस[2] तुज्झु कहन्ते कन्त ।
कहहु[3] विअक्खण पुनु कहहु[3] तो[4] अग्गिम[5] वित्तन्त ॥

— रअणि विरमिअ[6], हुअउँ पच्चूस[7] तरणि तिमिर
संहरिअ[8] हंसिअ[9] अरविन्द कानन,।। निन्दे नअन
परिहरिअ उट्ठि राए पक्खर[10] आनन ।
गइ उज्जीर अराहिअउँ[11] जंपिअ सकलओ कज्ज[12] ।
जइ पहु भइओ[13] पसन्न होअ तओ सिद्धाअत रज्ज[14] ॥

तव्वे मन्तिन्ह किअउ पथ्थाव पातिसाह गोचरिअ,
सुभ महुत्त सुप राजे भेट्टिअ[15] हिअ अम्बर वर लहिअ। हिअ
दुक्ख वैराग मेट्टिअ[16] ।

---

१ क० कण्ड । २ क० वस । ३ क० कहहिं । ४ किमि । ५ आगे । ६ रइनि विरंबेउ । ७ पव्वस, क० थच्छूस । ८ संहरेउ । ९ हसेउ इन्द । १० पक्खाक । ११ गे उजी पाराधि कै (संभवतः गे उजीर आराधि कै) । १२ जपेउ सयलउ काज । १३ शा० वडओ । १४ ये रअउ पभु प्रसन्न वड तइ वौसिटायत राज । १५ सुमहुत्त लेइ राय भेट्टिआ (इसी प्रकार ऊपर गोचरिआ) । १६ इय अम्बर वहिअ हिअव दुख वैराग मुक्किअ ।

(तृतीय पल्लव)

भृङ्गी फिर पूछती है:—

हे कान्त, जब तुम कहते हो तब कान में अमृत प्रवेश करता (हुआ जान पड़ता) है, इसलिए हे विचक्षण फिर कहो, आगे का वृत्तान्त कहो।

रात बीती, सवेरा हुआ, सूर्य ने अन्धकार का संहार किया, कमल गण हँसने लगे, नींद ने नेत्र छोड़े, राजा ने उठकर मुँह धोया।

जाकर वज़ीर की आराधना की, सब कार्य निवेदन किया, यदि बड़े प्रभु प्रसन्न हों तो राज्य प्रतिष्ठापित हो। तब मन्त्रियों ने प्रस्ताव किया कि बादशाह से भेंट करें। शुभ मुहूर्त में सुख से, एक घोड़ा और सुन्दर वस्त्र लेकर बादशाह को भेंट की; हृदय का दुःख और विराग मिटाया।

खोदालम्म[1] सुपसन्न हुअ[2] पुच्छ कुसलमय[3] वत्त।
पुनु पुनु पुनु पुतुलान[4] कए कित्तिसिंह कह वुत्त[5] ॥

अज्ज उच्छव अज्ज कल्लान, अज्ज सुदिन सुमहुत्त,
अज्ज माजे मझु पुत्त जाइअ[6], अज्ज पुन्न[7] पुरिसथ्थ
पातिसाह पापोस पाइअ।

अकुशल वेविहि एक पइ अवर तुम्ह परताप[8]।
अरु लोअन्तर सग्ग[9] गउ गअणराए मझु बाप ॥

फरमान भेल कत्रोण साहि, तिरहुत लेलि[10]
जन्हि साहि, डरे कहिनी कहए आन[11]। जेहां तोहे
ताहां असलान[12], पढम पेल्लिअ तुज्झ फरमान, गएन
राए तौं वधिअ, तौन सेर विहार चापिअ[13], चलइ तँ
चामर परइ[14] धरिअ छत्त तिरहुति उगाहिअ।

तव्वहुँ तोके रोस[15] नहि रज्ज करओ असलान।
अवे करिअउ अहिमान क अज्ज जलंजलि दान[16] ॥

---

१ छः खोदालम्म। २ भै। ३ सौ। ४ सलाम। ५ किचिसिंघ बोलत। ६ अजमय मह्युतनय जम्मिअ। ७ फ० पुल्ल ?। ८ कज पै एक तुज्झु परताप। ६ पुरइ। १० फरमाण भेल कनए साहि तिराहूति लेल। ११ जेइ दरक.. कहीअ आण। १२ इहा तुइ उहा असल्लाण। १३ (वधिअ) चलेण वीहार साहिआ। १४ दरइ। १५ तैअउ ताके तोस। १६ ओकरि अटकी आणकेउ अज जलिजलि दान

खुदावन्द ने खूब खुश होकर कुशल वार्ता पूछी। कीर्तिसिंह बार बार प्रणाम कर कहने लगे।

आज उत्सव है, आज कल्याण है, आज सुदिन है अच्छा मुहूर्त, आज मेरी माँ के पुत्र हुआ, जो आज पुण्यबल से बादशाह के चरण (जूते) मिले। अकुशल दो ही हैं—एक तो तुम्हारे प्रताप के ऊपर दूसरे का प्रताप और दूसरे मेरे पिता गणेश्वरराय लोकान्तर स्वर्ग गए। फरमान हुआ—'किस बादशाह ने तिरहुत लिया ?' ✓डर से दूसरी बात कहता हूँ—यहाँ तुम हो, वहाँ असलान है, पहले तुम्हारा हुक्म न माना, फिर गणेश्वरराय का वध किया। उस शेर ने बिहार पर कब्जा कर लिया ? उसके चलने पर चामर डोलता है, छत्र रखकर तिरहुत से कर वसूल करता है।

असलान राज्य करता है तब भी आपको क्रोध नहीं आता। तो आज अभिमान को तिलांजलि दान कर दीजिए।

बे भूपाला[1] मेइनी वेग्गडा एक्का[2] नारि।
सहहि[3] न पारइ वेवि भर अवस करावए मारि॥
— भुवन जग्गइ[4] तुम्ह परताप। तुम्हे[5] खग्गें रिउँ दलिअ, तुम्हे[5] सेवइ सवे राए[7] आवइ। तुम्हे दाने महि भरिअउँ[6], तुम्हे[5] किति[9] सवे लोए गावइ।
तुम्हे ण होसउँ असहना जइ सुनिअँउ रिउँ नाम[10]।
इअर वपुरा की करो[11] वीरत्तण निअ ठाम[12]॥
[एम कोप्पिअ सुनिअ सुरुतान, रोमञ्चिअ भुअ जुअल, भौह युगल[13] भर गेंठिठ पेल्लिअउँ[14] अहर विम्बे पप्फुरिअ, नयने कौकनदे कान्ति धरिअउँ।
खाण उँमारा सव्व के तं षणे भौ फरमान।
अपनेहु साँठे सम्पलहु तो तिरहुति पआन[15]॥
तपत हुअउँ सुरुतान रोल उँछल दरवारहिं।
जन परिजन[16] संचरिअ धरणि धसमस पए[17] भारहिं॥
तात भुअन भए गेल सव्व मन[18] सवतहु सङ्का।
बड़ा दूर बड़ हचड़ उव्वेजनि उजडल[19] लङ्का॥

१ मुआला। २ वेअना आका। ३ सहइ। ४ जगेउ। ५ तुम्ह। ६ खरिअउ। ७ सभ कोइ। ८ दान सुप्रसिद्ध। ९ गाँय। १० अइलिउ नाउ। ११ कतर। १२ हि ठामु। १३ जुगल। १४ भर गेठि परिअउ। १५ उपरहु छाटे सप्परहु तिरहूतिहि पयाण। १६ घण परिअण। १७ वसमु। १८ दिस। १९ (हच) र पुनमु निअ उजरलि।

दो राजाओं वाली पृथ्वी, और दो पुरुषों की एक ही स्त्री दोनों का भार नहीं सह सकती, अवश्य (एक को) मरवा डालती है।

आपका प्रताप संसार में देदीप्यमान है, आप ने सब शत्रुओं का विध्वंस किया है, आपकी सेवा के लिए सब राजा आते हैं, आप ने दान से पृथ्वी भर दी है, आपकी कीर्ति सब लोग गाते हैं—यदि आप ही शत्रु का नाम सुनकर प्रज्वलित (असहन-शील) नहीं होंगे, तो दूसरा बेचारा क्या कर सकता है, वीरता अपने स्थान पर रहे (अथवा आप ही तो वीरत्व के निज स्थान हैं)।

ऐसा सुनकर सुलतान को गुस्सा बढ़ा, दोनों भुजाओं में रोमाञ्च हो गया, दोनों भौंहों में गाँठें पड़ गईं, ओठ काँपने लगे, नेत्रों ने रक्त कमल की छवि धारण की,

खान उमराओं, सब को उसी समय यह हुक्म हुआ, 'अपनी अपनी तय्यारी करो, तिरहुत चलना होगा।'

सुल्तान बहुत गरम हुए, दरबार में शोर मच गया। लोग इधर उधर चलने लगे पैरों के बोझ से धरणी धसमस होने लगी। भुवन गरम हो उठा, सब के मन में चारों ओर डर होने लगा। बड़ी दूर है! बड़ा भारी युद्ध! मालूम होता है अभी लंका उजड़ जायगी।

देमान अव दगल गद वर[1],
कुरुवक वैमल अदप कइ[2]।
जनि अवहि सवहि दहु धाए कहु,
पकलि दोओ असलाए गइ[3]॥

तेन्हि सोअर वेवि सानन्द कित्तिसिंह वर नृपति
ए पसाओ वाहरओ आइअ[4]। एत्थन्तर वत्त विचित्त
केहु सुरुतानहु पाइअ[5]।
पुव्वे सेना सज्जिअइ[7] पच्छिम हुअउँ[8] पयान।
आण[9] करइते आण[10] भउँ विहिचरित्त को जान॥
तं[11] पुणे चिन्तइ राअ सो सव्वे हुअउँ महु लज्ज।
पुनु वि परिस्सम सिज्झिहइ कालहि चुक्किह कज्ज॥

तइसना प्रस्तावे चिन्ताभराक्रान्त[12] राअन्हि करो
मुखारविन्द देखेअ[13] महायुवराज श्रीमद्वीरसिंह देव
मन्त्री[14] भणिअ अइसनेओं उँपताप गुणिओ ण गुनिअ[15]
दुक्खे सिज्झइ राअ घर कज्ज तं उव्वेअ न करिपु[16],

---

१ देवाण अरदगर भै। २ (वैमल) महल के। ३ जनि अवहि सवहि पै धाइ के पकरि अञ्चल वअसल्ला गै। ४ (नृपति) लेइ पसाद बाहर आएउ। ५ क० पुरिवत्त रत्त। ६ पाएउ। ७ संउरिच। ८ हुआ। ९ क० अच। १० क० अएड। ११ यह पद्य ख० मे नहीं है। १२ (चिन्ता) भरोभण दत्त। १३ ख० में 'देखेअ' नहीं है इसके आगे महाव कुमार जुवराजन्ह श्री० इत्यादि। १४ मत्त। १५ ऐसनउ उँपचार गनीअउन गनीअइ। १६ करीअउ।

दीवान........., कुरुबक (?) अदब करके बैठा।

मानो अभी सब कोई दौड़कर असलान को पकड़ लादेंगे। वे दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए। कीर्तिसिंह बादशाह का प्रसाद पाकर बाहर आए। इस बीच में सुलतान की कुछ विचित्र बात सुन पड़ी। पूर्व में सेना सज्जित हुई किन्तु प्रस्थान पश्चिम को हुआ। करने कुछ गये थे हुआ कुछ, विधि चरित्र कौन जानता है? उस समय वह राजा (कीर्तिसिंह) सोचने लगे, "सब में मेरी लाज हुई। फिर भी परिश्रम से समय पर चूका हुआ काम सिद्ध होगा।"

उस समय चिन्ताभरानत राजाओं के मुखकमल देखकर महा युवराज श्रीमद्वीरसिंह देव का मन्त्री बोला—ऐसे उपताप न गिनने चाहिएँ न इनका कुछ भी विचार करना चाहिए। राजाओं के घर मुश्किल से कार्यसिद्धि होती है इसलिए उद्वेग नहीं करना चाहिए।

सुहिअ[1] पुच्छि संसअ हरिज्जिपु[2] । फल देवह आअ
पुरिस कम्म साहस करिज्जइ ॥

जइ साहसहु न सिद्धि हो, झंप करिव्वउ काह।
होज[3] होसइ एक्क पइ[4] वीर पुरिस उच्छाह[5] ॥
ओहु राओ विअक्खण तुम्हे गुणवन्त ओ सधम्म
तोंहे[6] शुद्ध[7], ओहु सदए तोहें[8] रज्ज पण्डिअ[9],
ओ जिगीपु तोहे सूर[10], ओहु राए तोहें[11] राजकुमार।
पुहवीपति सुरुतान ओ तुम्हे रायकुमार
एक्क चित्त जइ[11] सेविअइ धुअ होसइ परकार
इथ्थेन्तर पुत्तु रोल पड्ड[12] सेणड्ड सह्ल[13] को जान
नलिनि पत्त महि चलइ ज ओ सुरुतानी तकतान[14]

निशि[illegible]पाल[15]

चलिअ तकतान[16] सुरुतान इबराहमओ,
कुरुम भण[17] धरणि सुणु रणि वल नाहि मो[18] ।
(धरणि भण कुरुम सुनु धरणि वल नाहि मो।)

सुअण । २ हरिज्जै । ३ होणा । ४ सब्ब कर । ५ क० उच्छाह ।
तुम्हे । ७ सुहवकन्त । ८ रज्ज पण्डिअ । ९ डुअ जगत् मंडिअ ।
ख० में मडिअ के आगे वाला पाठ नहीं है । ११ जो । १२ बोल
ड्ड । १३ शयण शख, शा० सेण्ण संख । १४ नलिनि पात्र जिमि
ई । चलइतकतीणु सुरुताण । १५ स्त्रग्धरा छन्दः । १६ चलेउ जलण ।
क० मल । १८ धरणि भण कुरुम सुनु धरणा वल णाहि मो ।

मित्रों से पूछ कर शंका मिटानी चाहिए। फल तो भाग्य के आधीन है पुरुष का काम साहस है वह करना चाहिए।

यदि साहस से भी सिद्धि न हो तो खीज कर क्या होगा। जो होना होगा सो तो होगा ही, परन्तु वीर पुरुष को उत्साह रखना चाहिए। वह चतुर बादशाह है, तुम भी गुणवान हो, वह धर्मशील है तुम भी शुद्ध, वह दयावान है और तुम राज्यच्युत हो, वह विजयेच्छुक है और तुम हो वीर, वह राजा तुम राजकुमार।

वह पृथ्वीपति सुल्तान है और तुम राजकुमार। यदि एक चित्त से सेवा की जाएगी तो निश्चय ही उपाय (प्रकार) निकलेगा।

इस बीच में फिर शोर हुआ। फौज की संख्या कौन जान सकता था, जिस प्रकार कमल पत्र पृथ्वी पर (पृथ्वी को न छूता हुआ) हिलता डोलता है उसी प्रकार सुलतानी तख्त (?) चला।

सुल्तान इबराहिम शाह का तख्त चला। कूर्म (राज) कहने लगे, हे पृथ्वी सुनो मुझ में लड़ने (? धारण करने की) सामर्थ्य नहीं।

गिरि टरइ महि पडइ नाग मन कंपिआ[१]
तरणि रथ गगन पथ धूलि भरे झंपिआ[२]
तवल शत बाज कत भेरि भरे फुक्किआ
प्रलय घण सद्द हुअ शोर रव लुक्किआ[३] ।
तुलुक लष हरखँ हस अग्गि धुसफालहीं[४],
मानधर मारि फद्दर काड्डि करवालहीं[५] ।
मअ गणइ पअ पहइ भागि चलइ जं खणे[६],
पत्तुधर उपजु डर निन्द नाहि भंखणे ।
खग्ग लइ गव्व कइ तुलुक जब जुज्झइ[७],
अपि सगर सुरनअर संक पलि मुज्झइ ।
सोखि जल किअउ थल पत्ति पअ[८] भारहीं[९],
जानि धुअ संक हुअ सअल संसारहीं[२] ।
केसि कर बाँधि धरि चरण तल अप्पिआ[१०],
केसि पर नेमि करि अप्पु भरे थप्पिआ[११] ॥

पर्वत टलने लगे, पृथ्वी गिरने लगी; नागराज का मन काँप गया; सूर्य का रथ और आकाश-मार्ग धूलि के भार से ढक गए। सैकड़ों तबल बजने लगे, कितनी एक भेरी फू फू करने लगीं। प्रलय के मेघ का शब्द हुआ, मनुष्य का शोर तो छिप गया। लाखों तुर्क खुशी से हँसते थे और आगे जोरों से धँसते थे। मान-धारी (शूर वीर) मार कर तलवार से काट कर जब आगे रास्ता देखकर, बढ़ते थे तब बैरी के घर में डर उत्पन्न हुआ, शोक के मारे नींद नहीं। मुसल्मान जब तलवार लेकर अभिमान करके युद्ध करते थे, तो देवताओं का सारा नगर भय में पड़ कर मूर्छित हो जाता था। पैदल सेना ने पैरों के बल से ही जल को सुखाकर स्थल कर दिया, जानकर सारे संसार को निश्चय ही भय उत्पन्न हुआ। किसी ने किसी को बाँधकर चरणों में अर्पित किया, किसी ने दूसरे को लाकर अपने आप स्थापित किया।

चौसा अन्तर दीप दिगन्तर पातिसाह दिग विजय भम।
' दुग्गम गाहन्ते कर-वाहन्ते[1] बेवि सथ्थ सम्पलइ जम[2] ॥
-वन्दी करिअ विंदिस[3] गरुअ गिरि पट्टन जारिअ।
साअर सिमा[4] करिअ पार भै पारक मारिअ ॥
सरयस डांडीअ[5] सत्तु घोल लिअ पजेडा धाड़ें।
एक ठाम उतारिअ ठाम दस मारिअ धाड़ें ॥
' इबराहिम साह पआन ओ पुहवि नरेसर कमन सह[6] ।
गिरि साअर पार उँवार नहीं रेअति मेले जीव रह[7] ॥
-रेअति भेल जाहाँ जाइअ, पढ[8] एकओ छुअए न पाइअ।
वड़ि साति छोटाहु काँज, कटक लटक पटक वाज[9] ॥
चोरे घुमाइअ नाअक हाँथें[10], दोहाए पेलिअ दोसरे माँथें।
सेरें कीनि पानि आनिअ, पीवए पणे कापड़े[11] छानीअ ॥
पान क सए सोनाक टङ्का[12], चान्दन क मूल इन्धन विका
वहुल कोडि कनिक थोड, घीवक पँचाँ दीअ[13] घोड़ँ ॥
कुरुआ क तेलु आङ्ग लाइअ, वाँदी वड दासओ छपाइअ[14]।

---

१ शा० चाहन्ते। २ ख० मे यह पद्य है ही नहीं। ३ पर भु न्दी करिअ। ४ सीवा। ५ सञ्चरु दिडिअ। ६ को महइ। ७ राइए ले जीव रहिअइ। ८ पड। ९ मटक पटक लटक वाज। १० भवा। गुरु नाथे। ११ पिउआ लागि कपरा। १२ पान कसत सोणे के टका। १३ दिजिअ।। १४ वादि वरवर दास पाइअ।

चारों ओर द्वीप दिगन्तरों में बादशाह दिग्विजय के लिए घूमते थे। दुर्गम स्थान खोजते हुए और कर उगाहते हुए दोनों (राजकुमार) भी साथ साथ थे। विदेश को कब्जे में कर, बड़े बड़े पर्वत और नगर जलाकर, सागर की सीमा पार की, पार हुए को भी मारा। घोड़ों का धावा मारकर शत्रु को सर्वतः छिन्न किया। एक स्थान का उद्देश करके धावे में दश स्थानों को मारते (विध्वंस करते) थे।

इब्राहिम शाह की उस युद्ध यात्रा को पृथ्वी का कौन नरेश सहन कर सकता था? पर्वत सागर के पार जाने पर भी उबार नहीं था हाँ (केवल) रय्यत (प्रजा) होने पर जान बचती थी।

रय्यत होकर चाहे जहाँ जाइए, कोई शठ छू नहीं सकता। छोटी बात पर भी बड़ी मुश्किल (?), चटपट फौज आ पहुँचे। चोर नायक के हाथ से घुमाया जाता था, दूसरे के मत्थे की दोहाई देता था। सेर भर पानी खरीद कर लाइए वह भी पीते समय कपड़े से छानिए। पान के लिए सोने का टका दीजिए, ईंधन चन्दन के मोल बिकने लगा। बहुत कौड़ी देने पर थोड़ा कनिक मिलता था, और घोड़ा बेचकर घी। बाँदी और बड़े बड़े दासों को गँवाकर कड़ुआ (?) तेल अंग में लगाते थे।

एव गमिअउँ दूर दीगन्तर, रण[1] साहस बहु करिअ बहुल ठाम फल मूल भक्खिअ, तुलुक सङ्गे सञ्चार परम कट्ठे[2] आचार रक्खिअ।

सम्बर निरबल[3] किरिस[4] अँम्बर भेल पुराण।
जवन सभावहि निक्करुण तौं ण सुमरु सुरुतान॥

विभँ हीन नत्थि वाणिज्ज,[5] णहु विदेश ऋण संभरइ,[6] नहु मानधनक्खि भिक्ख[7] भावइ, राअघरहि उँप्परि, नहि दीन वअन नहु वअन आवइ[8]।

सेविअ सामि निसङ्क भए दैव न पुरवए आस।
अहह महत्तर किकरउँ गण्डले गणिअ उँपास॥

पिअ न चिन्तइ[9] चिन्त[10] णहु[11] मित्त नहु[11] भोअन संपजइ, भित्त माँगि भुक्खे छोड्डीअ,[12] घोर घास नहु[11] लहइ[13], दिवस दिवसें अति दुक्ख वढिअ[14]।

तवहु न[15] चुक्किअ एकओ[16] शिरि केशव काएत्थ।
अरु सोमेसर सब गहि[17] सहि रहिअउ दुरवत्थ[18]॥

---

१ दूर गमिअ दीप दीगन्तर बल (साहस)। २ दुक्ख। ३ निवलिअ। ४ किसिअ। ५ विभँ""वाणिज्ज—इतना ख० मे नहीं है। ६ रिणि घटै। ७ णहि उण मानधन भीषि। ८ कै दिन वचयण नहि दीन आवै।

९ पुछै। १० वित्त। ११ नहि। १२ भूख डढिआ। १३ क० नहिअ। १४ वढइ। १५ तैंअ उण। १६ खउरि। १७ सोमेमदर संगहिअ। १८ सहिअ रहिअ दुख सव्य।

इस प्रकार दूर देशों में गए, बहुत रण साहस किया, बहुत जगह फल मूल खाए, तुर्कों के साथ चलना--बड़े कष्ट से आचार की रक्षा की राह खर्च समाप्त हो गया, शरीर दुर्बल हो गए, कपड़े पुराने हो गए, यवन स्वभाव से ही क्रूर होते हैं, सुल्तान ने इस पर भी न याद की। रुपये के बिना वाणिज्य भी नहीं हो सकता, विदेश में ऋण भी नहीं मिल सकता, मान-धन को भीख माँगना अच्छा नहीं मालूम होता। राजा के घर में उत्पत्ति, दीनवचन मुख में कभी नहीं आ सकता! निःशंक होकर स्वामी की सेवा की (तब भी) दैव आशा नहीं पूरी करता। अहा! महापुरुष क्या करे, गिन गिन कर उपवास करने लगे।

प्रिय की चिन्ता नहीं, न मित्र की ही चिन्ता। परन्तु भोजन नहीं मिलता! परिजन भूख के मारे छोड़कर भाग गए, घोड़े को घास नहीं मिलती; दिन पर दिन बहुत दुख बढ़ा। तब भी एक श्री० (खौरि) केशव कायस्थ और सोमेश्वर ने नहीं छोड़ा। चुप होकर दुरवस्था सहते रहे।

वाणिज्ञ होइ विअप्खणा धम्म पंसारइ[1] हट्ट।
भित्ता मित्ता[2] कंचना विपथ काल कसवट्ट[3] ॥

तैसना परमकष्ट काष्टा[4] करे पस्तार दुहु सोदर[5] समाज, अनुचित लज्जा,[6] आचारक रत्ता, गुणक परीक्षा, हरिश्चंद्र क कथा, नल क[7] व्यवस्था। रामदेव क[7] रीति दान[8] प्रीति, निअ एक परिग्गह, साहस उत्साह[9] अकृत्य[10] बाधा, बलि कर्ण दधीचि करो[7] स्पर्धा[11] साध[12] तं पखे चिन्तइ[13] एक्कु पइ कित्तिसिंह अरु[14] राए।
अंमह एत्ता दुप्ख सुनि किमि जिजविह मुक्कु माअे[15] ॥

अच्छै[16] मन्ति विअक्खणा तिरहुति केरा खंभ।
मुज्झु माय निअ दीजिहि हथल वंध ॥

छन्दः—तहाँ अछैअ मन्ति आनन्द खाण,
जे मन्धि भेद विग्गहउ जाण।
सुपवित्त मित्त सिरि हंसराज,
सरवस्स उपेक्खइ अप्प काज।

१—पसारो। २ क० भिचा। ३ क० तसु वट्ट। ४ दसा। ५ दू सहोवर। ६ अचिंतत लाज। ७ की। ८ क० दाम ६ निअ" उत्साह के स्थान पर मित्र परिगाहरा उत्साह। १० अकीचि। ११ सद्धां। १२ ख० में नहीं है। १३ चितिअ। १३ गुरु। १५ तुम्हे अहेदुक्ख सुनि किमि जिअवो (मुझ ?) माय। १६ यह पत्र क० में नहीं है।

चतुर लोग बनिए के समान हैं, धर्म प्रसार ही बाजार है, भृत्य और मित्र सोना हैं और विपत्ति काल ही उनकी कसौटी है।

उस समय परम कष्ट की अवस्था में दोनों भाइयों के समाज में एक दूसरे की लज्जा (अथवा ख० के अनुसार अचिन्तित लज्जा) थी आचार की रक्षा थी गुण की परीक्षा थी। श्री० राम की रीति और दान की प्रीति थी; मित्र को उबारने में उत्साह (ख० के अनुसार)। अनुचित कार्य करने में बाधा थी; बलि, कर्ण, दधीचि के साथ स्पर्धा होती थी।

परन्तु उस समय राजा कीर्तिसिंह सोचते थे, "क्या हमारा इतना दुःख सुनकर हमारी माँ जीती बचेगी ? वहाँ तिरहुत का स्तंभ विचक्षण मन्त्री है, जिसको मेरी माँ ने मेरे हाथ बाँध दिया है। (छन्द) वहाँ आनन्द खान मन्त्री है जो सन्धि, भेद विग्रह सभी जानता है। सुपवित्र मित्र श्री हंसराज हैं जो मेरे लिए सब की उपेक्षा कर देंगे।

सिरि अग्र सहोअर राअसिंह,
मङ्गाम परकम रुद्द सिंह
गुणे गरुअ मन्ति गोविन्द दत्त,
तसु वंस वडाई कहजो कत्त
हर क भगत हरदत्त नाम,
मङ्गाम कम्म अज्जुन समान[1]।
हरि हर धम्मानीकारी,
जिसु पुण तिण लोइ पुरसत्थ चारी।
णय[3] मग चतुर ओझा मरेस,
तिसु पणति णलागे कलु खलेस।
न्याय[4] सिंघ राउत्त सुजाण,
संगाम परकम अजुण समाण॥

तसु परवोधें माए मुझु[5] धुअ न धरिज्जिह सोग[6]।
विपइ न आवइ[7] तासु घर जसु अनुरत्तेओ लोग[8]॥
चापि कहजो[9] सुरतान के ओड़े[10] करजो[11] उपाए।
विनु वोलन्त जो मन पलइ आवे फत सह तजि राए[12]॥

१ (हरदत्त) माणो, सङ्गाम परक्कम परसुराम। २, ३, ४ यह क० नहीं है। मधु। ६ (धुअ) णहि घरि है सोक। ७ आवति। जिसु अनुवर्तत लोग। ८ कहिअ। १० भाटे। ११ करिअ। १२ विनु लते जन्म भरि एवे फत इत कराया।

फिर हमारा भाई श्री० राजसिंह है जो संग्राम में पराक्रम करने के लिए क्रुद्ध सिंह है। गुण में गुरु मन्त्री गोविंद दास हैं, इनके वंश की बड़ाई किस प्रकार कहूँ? श्री० शिवजी के भक्त हरदास नाम के हैं जो संग्राम में अर्जुन के समान हैं (अथवा परशुराम के समान ख० पुस्तक के अनुसार)। हरिहर धर्माधिकारी हैं जिनका प्राण तीनों लोकों में चारों पुरुषार्थ [illegible] है (?)। नय मार्ग में चतुर अमरेश ओझा हैं जिनको [illegible] करने से निश्चय क्लेश नहीं लगता। [illegible] भी हैं जो युद्ध में अर्जुन के समान हैं। [illegible] निश्चय ही मेरी माँ शोक नहीं [illegible]। जिनके [illegible] अनुरक्त होते हैं उसके घर विपत्ति नहीं आती। [illegible] सुल्तान से कहूँ कि यदि कोई [illegible] जो [illegible] मन में पड़ती तो यह अब तक क्यों [illegible]"।

जेन्हे[1] साहस करिअ[2] रण छप्प[3], जेन्हे[1] अग्नि धम्म करि[2], जेन्हे[1] सिंहकेशर गहिज्जिअ, जेन्हे[1] सप्पफण धरिज्जिअ, जेन्हे[1] रुद्द हुअ जम सहिज्जिअ।

तेन्हे वेवि सहोअरहि[4] पाचरिअउँ सुरतान।
तावे न जीवन नेह रह जावे[5] न लग्गइ मान॥

ताप लहिअ काल सुपसन्न[6]। पुनु पसन्न विहि हुअउँ पुनु वि दुक्ख दारिद्द खण्डिअ, कटकासौ[7] तिरहुत्तिराअरण[8] उच्छाहे मण्डीअ।

फलिअउ साहस कम्म अरु[10] सन्नग्गह[11] फरमान।
पुहवी[12] तासु असक्क की जसु पसन्न सुरतान॥
पक्ख[13] ण पालै पउआ, अंग न राखै राउ।
फूर ण बोलै सूअणा धम्ममंति कह जाउ॥

जिन्होंने साहस कर रण में छाप मारी, <u>जो आगे धँसे</u>, जिन्होंने शेर के बाल पकड़े, जिन्होंने सर्प का फन हाथ में धरा और जिन्होंने क्रुद्ध हुए यम को भी सहन किया, उन्हीं दोनों भाइयों ने सुल्तान से भेंट की। "तब तक जीवन में कोई स्नेह नहीं जब तक उस में मान न हो"। अच्छा समय फिर बहुरा। विधि फिर प्रसन्न हुए, फिर दुख और दारिद्र्य खंडित हुआ। फौजें तिरहुत के राजा के रण के उत्साह से सुशोभित हुई।

साहस कर्म सफल हुआ और फरमान 'सादिर' हुआ। जिस पर सुल्तान प्रसन्न हों उसके लिए क्या पृथ्वी अशक्य है ?

यदि पउआ (?) पक्ष का पालन न करे, यदि राजा अंग की रक्षा न करे और यदि सुजन सच न बोले, (तो) धर्ममन्त्री कहता है कि यह नाश को प्राप्त होते हैं।

बलेन रिपुमण्डलीसमयदर्पसंहारिणा[1],
यशोभिरभितो जगत्कुमुदकुन्दचन्द्रोपमैः।
श्रिया चलितचामरद्वयतुरङ्गरङ्गस्थया,
सदा सफलसाहसो जयति कीर्तिसिंहो नृपः॥

इति श्रीविद्यापतिविरचितायां कीर्तिलतायां तृतीयः पल्लवः।

---

१ यह शा० का पाठ है क० और ख० में संचारिणा है। क० में संस्कृत पद्यों का पाठ बहुधा अशुद्ध है और ख० में तो नितान्त भ्रष्ट है।

२ द्वितीयः।

राजा कीर्तिसिंह की जय होती है। उनका साहस, बल, यश और श्री से सफल है। उनका बल युद्ध में रिपुदल के गर्व का संहार करने वाला है। उनका यश जगत् के दोनों ओर कुमुद, कुन्द और चन्द्रमा के समान है तथा उनकी श्री उनके तुरंग रूपी रंग (मंच) पर विराजमान है जिसके (दोनों ओर) दो चामर हैं।

श्री विद्यापति की रची हुई कीर्तिलता में तीसरा पल्लव समाप्त हुआ।

(चतुर्थपल्लवः)

अथ[1] भृङ्गी पुनः पृच्छति—

कह कह कन्ता सच्चु भणन्ता किमि परि[2] सेना सञ्चरिअ।
किमि तिरहुत्ती होअउँ[3] पवित्ती, अरु असलान किकरिआ॥
कित्तिसिंह गुण हओ कओ[4] पेअसि[5] अप्पहि कान।
विनु जने विनु धने धन्धे लिनु जे चालिअ[6] सुरुतान॥
गरुअओ[1] वेवि कुमारओ गरुअ मणिक असलान।
जोसु लाजे जोहि के आपे (शा० जासु लाजे जाहि के आये) चलु सुरुतान॥

सुरुतान के फरमाते सगरे राह सम[7] रोल पलु, हादी पोजा मपहूम लरु[8]॥ लच्चावधि[9] पयदा क शब्द गाद्य पडु, परवपत उँप्पलु। वाद्य वाजु सेना मजु[9]। हरि तुरंग पदाति[10] संघट्ट[11] मेल, वाहर कए दनेज[12] देल॥

---

१ ख० मे यह पाठ नहीं है—'अथ''''' पृच्छति', 'गरुअओ सुरुतान', 'लच्चावधि''''सेना मजु'। २ फरि। ३ हुई। ४ फहउ। ५ पेसिवि ६ चालेउ। ७ नगर—राहसम के स्थान पर। ८ ख० मे ही 'कादी''' लरु' इतना पाठ है। ९ ख० में 'सुरुतान मे फरमाने' के अनन्तर 'वाद्य वाजु सेण छाजु' इतना पाठ क० से अधिक है जो प्रस्तुत पाठ का पाठान्तर है। १० क० पदादि। सघद। १२ दहलीज।

(चतुर्थ पल्लव)

भृङ्गी फिर कहती है—

हे कान्त कहो कहो, सच कहो, सेना चारों ओर कैसे चली, तिरहुत में कैसा हाल हुआ और असलान ने क्या किया।

मैं कीर्तिसिंह के गुण कहता हूँ, हे प्रेयसी, तुम कान लगाओ, (उन कीर्तिसिंह के) जिन्होंने बिना जन, बिना धन और बिना किसी धन्धे के सुल्तान को (तिरहुत की ओर) चला दिया। दोनों कुमार बड़े आदमी थे, मलिक असलान भी बड़ा था, जिनके लिए सुल्तान आप ही चले आए। सुलतान के हुक्म से सारी राह में (शा० सागर के समान) बराबर शोर मच गया। काजी ख्वाजा और मखदूम लड़ने लगे। लाख पियादों का शब्द बज उठा। वैरी का समय (?) आ गया। सेना में बाजा बजने लगा। हाथी, घोड़े पैदल इकट्ठे हुए, गहलौत के —— दिए गए।

सज्जह सज्जह रोल पलु[1], जानिअ इथ्थि न रिथ्थि[2]
राय मनोहर संपलिअ कटकाओ तिरहुत्ति।
पढमहि सज्जिअ हथ्थिवर, तो रह सज्जि[3] तुरंग
पाइकह चक्कह को गणइ चलिअ सेन चतुरंग।
छन्दः[4]–अणवरत हाथि, मयमत्त जाथि।

भागन्ते गाछ, चापन्ते काछ॥
तोरन्ते बोल[5], मारन्ते घोल।
संगाम थेघ, भूमिट्ट मेघ[6]॥
अन्धार कूट, दिगविजय छूट।
म्मरीर गव्व देखन्ते भव्व[7]।
चालन्ते काण, पव्वअ[8] समान।

गरुअ गरुअ मुराड[9], मारि दस सथि मानुस करो मुराड
विन्ध्य सओ विधाताओ किनि काढल[10], कुम्भोद्भव करे;
नियमातिक्रमे पलि पव्वतओ[11] वाढल, थाए खनए मारए
जान, महाउओ क आँकुस महर्ते मान[12]।

१ सह हुअ। २ इत्ति या मित्ति। ३ फ० तोरि। ४ मधुभार छन्द। ५ उट्टन्त रोर। ६ भूमि भेग्व। ७ सव्व। ८ पव्वओ। ९ शा० मुराड। १० (मारि) दशम सहत माणुसक मुराड जनु वीन्हने विधाते वीवि काढल। ११ विन्ज। १२ मारै धारै खाये आण, महाउत क अङ्कुश समाणत मान।

तय्यार हो तय्यार हो का शोर मच गया, न तादाद जान पड़ी न माल असबाब। मनोहर राजा की फ़ौजें तिरहुत को चलीं। प्रथम हस्तिसेना तय्यार हुई, फिर रथ और घुड़सवार तय्यार हुए, पैदल सेना के चक्र कौन गिने ? चतुरंग सेना चली।

अनगिनती हाथी मद से मतवाले चले जाते थे। भागते हुए किनारे के वृक्ष काटते जाते थे। चिंघाड़ते थे, घोड़ों को मारते थे। संग्राम में तेग के समान, मानो पृथ्वी पर मेघ स्थित हो, अन्धकार की चोटियाँ मानो दिग्विजय के लिए छूटी हों। मानों सशरीर गर्व ही हों, देखने में बड़े सुन्दर। कान हिलाते हुए पर्वत के समान मालूम पड़ते थे।

बड़े बड़े सुण्डों को मार कर दस गुने मनुष्य के सुण्ड क्या विधाता ने ही विन्ध्याचल से निकाले हैं (?) क्या अगस्त्य ऋषि की आज्ञा टाल कर पर्वत बढ़ आया। दौड़ कर खोदता है, मानो मरेगा, महावत के अंकुश को भी मुश्किल से (?) मानता है।

पाइ्गह पग्ग भरें भउँ पल्लानिअउँ[1] तुरंग।
थप्प थप्प थन वार कइ, सुनि रोमञ्चिअ[2] अग॥
[1]–अनेक वाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिआ।
परक्कमेहि जासु नाम दीप दीपे[4] जानिआ॥
विसाल कन्ध चारु वन्ध सत्ति रूअ सोहणा[5]।
तलप्प हाथि लाँघि जाथि सत्त सेण खोहणा॥
समथ्थ सूर ऊरपूर चारि पाओ चक्करें।
अनन्त जुज्झ मज्झ वुज्झि सामि काज[6] संगरे॥
सुजाति शुद्ध कोहे कुद्ध तोरि[7] धाव कन्धरा[8]।
विशुद्ध दापे मारदापे चूरि जा वसुन्धरा॥
विपप्ख केन मेन हेरि[9] हिंसी हिंसी दाम से।
निमान[10] सद्द भेरि संग खोणि खुन्द ताम्र से॥
तज्ञान भीत[11] वात जीत चामरेहि मण्डिआ।
विचित्त चित्त नाच नित्त राग वाग पण्डिआ॥
[1]–विछि वाछि तेजि ताजि पप्खरेहि साजि साजि।
लप्ख संख आनु[12] घोर जासु मूलें मेरु थोर[13]।

१ पल्लानिये। २ रोवचिअ। ३ णाराज इद्द। ४ टाव टाव। ५ निशान वक चारु कध सचिरुअ सोहाणा क० कण्ण सचि। ६ क० तार ७ तरि। ८ कन्दरा। ९ विपक्ख केर समग्ग देर। १० ख० में यह पंक्ति नहीं है। ११ क० डोत। १२ क० आहु। १३ जासु मेद मोलयो......।

पैदलों के पैरों का जोर हुआ। घोड़े कसे गए। थपथप थपथप सुन कर रोमाञ्च पैदा हो गया।

बहुत से घोड़े तेज और ताजे करके सजा सजा कर लाए गए। ऐसे जिनके नाम उनके पराक्रम के कारण द्वीप द्वीपान्तरों में मालूम थे। चौड़े कन्धों वाले, सुन्दर बन्धन वाले, बल और रुप से शोभित, जो तड़प कर हाथी को भी लांघ जाते थे और शत्रु की सेना में क्षोभ उत्पन्न करते थे। वह बलवान थे, वीर थे-भरपूर थे चारों पैरों से चक्कर काटते थे। स्वामी के कार्य के लिए युद्ध का अनन्त मर्म समझते थे। अच्छी जात के शुद्ध, क्रोध से क्रुध, बन्धन (?) को तोड़ डालते थे, शुद्ध अभिमान से टाप मारते थे जिससे धरती चूर चूर हो जाती थी, शत्रुपक्ष के घोड़ों को (?) देख कर बंधन में बंधे बंधे ही हिनहिनाते थे। निशान और भेरी के शब्द के साथ गुस्से (?) से जमीन खोदते थे। चाबुक से डरने वाले, पवन को भी जीतने वाले, चामरों से शोभित, चित्र विचित्र नाच नाचते थे और रागादि को समझने वाले थे। इस प्रकार (?) तेज कर के ताजे घोड़े जीन (?) से सजासजा कर एक लाख संख्या में लाए गए जिनके मूल्य के लिए (सोने का पर्वत) मेरु भी थोड़ा ही था।

कटक चांगरे चांगु। वाँकुले वाँकुले वअने, काचले काचले नअने[1]। अटलें अटलें वाँधा, तीखें तरले काँधे[2]। जाहि करो पीठिआ पुकरो अहङ्कार सारिआ[3], पव्व-तंओ लाँघि पार क मारिअ[4]। अखिल सेन्नि सत्तु करी कीर्तिकल्लोलिनी लाँघि भेल पार, ताहि करो जल संपर्के चारुहु पाञे धोपार[5]। मुरली मनोरी, कुण्डली, मण्डली प्रभृति[6] नाना गति करन्ते भास कस, जनि पाय तलें पवन देवता वस। पञ्च करे आकारे मुँह पाट[6], जनि स्वामी[7] करो यशश्चन्दन तिलकन ललाट[8]। तेजमन्त तर वाल[9], तरुण, तामस भरें[10] वाडल[11] सिन्धु[12] पार सम्भृत, तरंगि रस रहइ[13] तें काढल॥ गवण[14] पवन पछुआव, वेगें मानसहु जीति जा। धाय[15] धूप धसमसइ वज्ज जिमि गज्ज भूमि पा[16]॥ सङ्गाम भूमितल[17] सञ्चरइ नाच नचावइ विविह परि। अरिराअन्ह लच्छिअ छोलि ले, पर आम असवार कइ[18]॥

१ ख० में पाठ इस प्रकार है—वाकुरे वायरो, वाकरे काकरो नयने।२ आटरें थाटुले वाधा, पातरां निखरी काधा। ३ क० अहङ्कार साहिआ। ४ पव्वंतौ नार्के चारिउ पावो पार। ५ कुरुरि मरोरि। ६ पक्ष के आकरे मुंह पाट। ७ भामि। ८ वाद। ९ तरवारि। १० मै। ११ काढल। १२ सेधु। १३ वाहइ। १४ वादल। १५ क० गमवे। १६ धार। १७ क० रज मजो धूम गज्ज पार। १८ थल। १९ क० अरि गए लच्छि अच्छिलि ले, आस पुरावइ असवार कइ।

(अश्व) सेना बड़ी सुन्दर थी। बाँके बाँके मुंह, काचल (? काकल) नेत्र, ओटले (?) में बाँधे थे, उनके कन्धे पतले और चञ्चल थे। जिनकी पीठ पर चढ़कर (?) अहङ्कार पुकारता था। जो पर्वत को भी लाँघ कर उस पार के (शत्रु को) मारते थे। शत्रु की समस्त सेना की कीर्ति एक नदी के समान है, उसको पार किया है, (मानो) उसी के जल के सम्पर्क से चारों पैर धुल गए हैं (अर्थात् श्वेत हैं)। मुरली, मनोरी, कुण्डली मंडली आदि नाना प्रकार की अश्वों की विशेष गतियों से जब वह चलते थे तो ऐसा जान पड़ता था मानों उनके पैरों के नीचे पवनदेवता वास करते हैं उनका मुख कमल के आकार से मण्डित था, मानों वह (कमल नहीं) उनके स्वामी के यश रूपी चन्दन का तिलक मस्तक पर लगा था।

वे घोड़े बाल हों अथवा तरुण बड़े तेजस्वी थे और क्रोध से और बड़े हो गए थे; सिन्धु के पार के थे, मानों सूर्य्य के रथ से निकाल लिए गए हों। पछियाव हवा के समान वेग में थे और मन को भी (वेग में) जीत लेथे थे। दौड़ कर ऐसे धसते थे जैसे पृथ्वी पर वज्र की गर्जना। संग्राम भूमि में उतर कर नाना प्रकार के नाच वैरी (?) को नचाते थे, शत्रु पक्ष के राजाओं की लक्ष्मी छीन लेते थे और (इस प्रकार) सवार की आस पूरी करते थे।

— तं तुरङ्गम चलिअ[1] सुरुतान, ध्वज[2] चामर विथ्थरिअ[3], तसु तुरंग कत पांचि[4] आनिअ, जसु पौरुस वर लहिअ, राय घरहिं दिश विदिश जानोअ। ५१. ७०२

वेवि सहोअर राअ गिरि लहिअउँ वेवि तुरंग[6]।
पास पसंसए मव्व[7] जा दूर सत्तु ले भंग॥
तेजी ताजी तुरअ चारि दिश चप्परि छुट्टइ,
तरुण तुरुक्के असवार वोम जनो चाबुक[8] फुट्टइ।
मोजाजो मोजो जोलि[9] तीर भरि तरकस चापे[10];
सीगिनी देइ कसीस गव्व कए गरुओ दापे[11]।
निस्सरिअ फौद अगणत्त, कत तत परिगणना पारके[12]।
पअ भार कोल अहि भोल कर[13] करुम उलटि कावट्टदे॥
(ख० अग्रिम—छन्दः—कोटि धनुद्धर धावथि[14] पायक,
लप्पइ[15] संग चलिअउँ ढलवाइक
चलु फरिआ इक अगे चंगे[16],
चमक होइ खग्गग्ग तरंगे[17]।

१ चहेउ। २ वयद। ३ विरियरिअउ। ४ सचि। ५ जसु पौरुख रा सअ रदी वीदीस जानिअ। ६ वार गिरिश'''आवेवी तुरङ्ग ७ गव्व ८ जिमि ताजणा। ९ मौजे मौजे जोरि। १० चापेउ। ११ सिगिणि कौसीस गव्व कै तरुवे दापे। १२ तसु गणना गणै जे पार को। १३ प भार को जद्दि भोर। १४ धावहिं। १५ ख० में 'लप्पइ.. ढल वाइक' स्थान पर कुछ नहीं है। १६ अरु फरकारे अगे वके। १७ चकमक मर्खग तरङ्गे

ऐसे घोड़े पर ध्वजा और चामर का विस्तार करके सुलतान चले। वह घोड़ा कैसा था जो खींचकर लाया गया बड़े यश और पौरुष को प्राप्त; देश विदेश के राज घरानों को जानता था। दोनों भाइयों ने राजगिरि (?) में दो घोड़े लिए। सब कोई पास जा जाकर उनकी प्रशंसा करते थे 'वह शत्रु को दूर भगा देंगे'। तेज ताजे घोड़े चारों दिशाओं को छाते हुए छूट पड़े, जवान तुर्क का चाबुक बाँस के समान फूटता था। छील छील कर इकट्ठा करके तीर तरकश में भरते थे, बड़े अभिमान से और चाव से सींगिनी (बारूद भरने के लिए खोखली सींग) में कसीस देते थे।

असंख्य सेना निकली। (कितनी (?) उसकी गणना कौन कर सकता था। (उस सेना ने) पद के भार से बराह और अनन्त को हैरान कर दिया, कूर्म करवटें बदलने लगे। २।१

छन्द। कोटियां धनुर्धारी पैदल दौड़ते चले जाते थे। लाख ढाल वाहक चले। एक ओर फलक लिए हुए सुन्दर सैनिक चले; (एक ओर) तलवारों की तरंगें चकमक करती थीं।

मत्त मगोल वोल्ल एाहि वुज्झइ,
घुन्दकार कारण रण वुज्झयी[1]।
काँच मासु कवहु कर भोअण,
कादम्वरि रसे लोहित लोअन ॥
जोअन वीस दिनद्धे धावथि[2],
वगल क रोटी दिवस गमावथि[3]।
वलके[4] काटि कमानहि जोले[5],
धाञे चलथि गिरि[6] उप्पर घोरें ॥
गो वम्भन[7] वधँ दोस न मानथि,
पर पुर नारि वन्दि कए आनथि।
हस हरपे रुयड हासह जहिं[8],
तरुणे तुरुक वाना सए सहसहि[9] ॥
अरु कत धाँगड[10] देषिअथि जाइ तें,
गोरु मारि मिसिमिल[11] कए पाइतें।
धाँगड[12] कटकहि लटक चड दै दिस धाउँ जाथि[12]
दंस केरी राएधर तरुणी हट्ट विकाथि[13]

---

१ लोदकार कारण रस वुझै। २ धावहि। ३ गमावहि। ४ वेलक नाने बोरे। ६ धाइ चलै शिलि। ७ वम्भण। ८ हशि हाथ थिर] पइसेहि। ६ सह सय सहि। १० धंगर। ११ विसिमिलि। १ हि कटक गया मं (? जं) दिस धारे जाहि। १३ हाट विकाहि

मत मंगोल बोली नहीं समझता। खोदकार (स्वामी ?) के कारण ही रण में जूझता था। कभी कच्चे मांस का ही भोजन करता था आँखें उसकी मदिरा रस से लाल थीं। आधे दिन में ही बीस योजन दौड़ जाए। खाल में रक्खी हुई रोटी से दिन काट दे। बेल को काट कर कमान में जोड़ता था, पहाड़ के ऊपर घोड़े के साथ दौड़ कर चलता था। गो और ब्राह्मण के वध करने से पाप नहीं मानता, बैरी के नगर की स्त्रियों को कैद कर लाता। आनन्दित होने पर जवान तुर्क सैकड़ों बातों में सहसा ही जैसे रूपड हँसे वैसे हंसता था। और कैसे धमगड़ दिखाई देते थे—ऐसे जो गाय मार कर बिसमल्ला कर खा लेते थे। इस प्रकार बड़े बड़े धमगड़ फौज में शामिल थे, जिधर ही वह निकल जाते थे उधर ही के राजा के घर की युवतियाँ बाजार में बिकने लगती थीं।

मत्त मगोल बोल साहि बुज्झइ,
        धुन्दकार कारण रण युज्भयी[1]।
काँच मासु कबहु कर भोअण,
        कादम्बरि रसे [6]लोहित लोअन ॥
जोअन बीस दिनहे धावथि[2],
        यगल क रोटी दिवस गमावथि[3]।
वलके[4] काटि कमानहि जोले[5],
        धाओ चलथि गिरि[6] उप्पर घोरें ॥
गो वम्भन[7] वधँ दोस न मानथि,
        पर पुर नारि वन्दि कए आनथि।
हस हरपे रुपड हासह जहिं[8],
        तरूणे तुरुक बाचा सए सह साहि[9] ॥
अरु कत धाँगड[10] देपिअथि जाइ तें,
        गोरु मारि मिसिमिल[11] कए पाइतें।
अरु धाँगड[10] कटकहि लटक वड डै दिस धाडे जाथि[12]
तं दिस केरी राएधर तरुणी हट्ट विकाथि[13]

---

१ खोदकार कारण रस वुझै। २ धावहि। ३ गमावहि। ४ बेलक। ५ कमाने जोरे। ६ धाइ चलै गिरि। ७ बंभरा। ८ हरि हाथ थिव ढर रा पइसैहि। ९ सह सय सहि। १० धंगर। ११ त्रिसिमिलि। १२ लटकहि कटक गरा गं (? जं) दिस धारे जाहि। १३ हाट विकाहि।

त मंगोल बोली नहीं समझता। खोदकार (स्वामी ?) के कारण
 रण में जूझता था। कभी कच्चे मांस का ही भोजन करता था
आँखें उसकी मदिरा रस से लाल थीं। आधे दिन में ही बीस
योजन दौड़ जाए। बगल में रक्खी हुई रोटी से दिन काट दे।
बैल को काट कर कमान में जोड़ता था, पहाड़ के ऊपर घोड़े के
साथ दौड़ कर चलता था। गो और ब्राह्मण के वध करने से पाप
नहीं मानता, वैरी के नगर की स्त्रियों को कैद कर लाता। आन-
न्दित होने पर जवान तुर्क सैकड़ों बातों में सहजा ही जैसे स्याड
हँसे वैसे हंसता था। और कैसे धगड़ दिखाई देते थे—ऐसे जो
गाय मार कर बिस्मल्ला कर खा लेते थे। इस प्रकार बड़े बड़े
धगड़ फौज में शामिल थे, जिधर ही वह निकल जाते थे उधर
ही के राजा के घर की युवतियाँ बाजार में बिकने लगती थीं।

(ख० माणवहला छंद) सावर एक हांक तन्हि का[१] हाथ।
चेथइजे कोथइजे वेढल[२] माथ।
दूर दुग्गम आगि जारथि,
नारि विभारि वालक[३] मारथि।
नूडि[४] अरजन पेटे वुए,
अन्याजे वृद्धि कन्दल[५] खए॥
न दीनाक दया[६] न सकता क डर,
न वासि सम्वर[७] न विश्राही[८] घर।
न अपक गरहा[९] न पुन्यक काज,
न शत्रु क शङ्का न मित्र क लाज[१०]॥
न थीर वचन के थोड़े ग्रास,
न जस लोभ न अपजस त्रास।
न शुद्ध हृदय न साधुक संग,
न पिउँ वाँउ पसओ न युद्ध भङ्ग[११]॥
ऐसो कटकहिं लटक वड[१२], जाइतें देपिअ वहुत।
भोअण भष्खण[१३] छाड[१४] नहि गमणे न हो परिभूत॥

---

१ (एक) वक उन्ह के। २ चेथरा कोथरा वेढले। ३ वाल। ४ दूरि। ५ कंदर। ६ दाया। ७ सम्वल। ८ विश्राहलि। ९ न अपडाराक जस न पाप ग्रह। १० क० काज। ११ न पिउवाँ उपमङ्ग न जुझ०। भङ्ग। १२ ऐसन लटकहिं कटक गए। १३ भूखरा। १४ पाव।

एक सवार (चमड़ा ?) उस (धगाड़ों) के हाथ में था। चिथड़ों से सिर बँधा था।

दूर दुर्गम स्थान जलाते थे। स्त्रियों को निकाल कर बालकों को मारते थे। उनकी आमदनी लूट थी, उसी से पेट भरता था। अन्याय से उनकी वृद्धि थी और संग्राम (?) से क्षय। न उनको दीनों पर दया न शक्तिवान से डर, न उनके पास राह खर्च न उनके घर विवाहिता स्त्री। न अपने आप लज्जा, न पुराय का काम, न वैरी की शङ्का, न मित्रों से लज्जा। उनके वचन स्थिर नहीं, उनके भास छोटे नहीं। उनको न यश का लोभ न अपयश का डर। उनका हृदय शुद्ध नहीं, उनका और साधुओं का संग साथ नहीं। न प्रिय जनों से प्रीति और न युद्ध से भाग खड़े होना। ऐसे बहुत से धगाड़ फौज में शामिल थे और जाते हुए देख पड़ते थे। खाना पीना उनका (किसी समय) नहीं छूटता था और रास्ता चलने से वह थकते नहीं थे।

ता पाखे आवत्त हुअ हिन्दू दल गमनेन।
राआ गेणए न पारिअइ राउत लेक्खइ केण[1] ॥

छन्दः[2]

दिग्गन्तर राआ सेवो[3] आआ ते कटकाओ जाही।
निअ निअ धन गव्वे[4] सङ्गरे भव्वे पुहवी नाहि समाही ॥
राउत्ता पुत्ता[5] चलइ बहुत्ता पअ मरे मेइणि कम्पा।
पत्तापे[6] चिन्हे भिन्ने भिन्ने धूली रह रह झम्पा ॥
जो अएडा[7] धावहि तुरय णचावहि बोलहि गाढिम[8] बोला।
लोहित पित सामर लहिअउँ चामर सवणहि कुण्डल डोला[9]॥
आवत्त विवत्ते[10] पअ परिवत्ते जुग परिवत्तन भाण।
धन तवल निसाने सुनिअ न काने साण बुझावइ आणा[11] ॥
वेसरि अरु गद्दह लक्ख वरद्दह इति का महिसा कोटी[12]।
असवार चलन्ते पाअ घलन्ते पुहवी भए जा छोटी[13] ॥

१ हुव्वको रावा नाउत्त लेखिअे केण। २ पुमानरी छन्द। ३ सेवा। ४ दप्पे। ५ राउत पाइक्का। ६ पताकहि। ७ जायेण। ८ क० गढिम। ६ लोहित इ सीतल शायर ओन्हि सै चामर श्रवणन्हि कुण्डल ला। १० विवट्टे। ११ ख० में परिवते' के उपरान्त 'अणा' तक पाठ नहीं है। १२ वेसरि अउरु मद्दह होइ समद्दह इडी का महिसा कोटि। १३ ख० असवार'''घलन्ते पाठ नहीं है, [बाकी 'धरणी मै गउ छेटि' इतना 'आवत्त विवट्टे पअ परिवत्ते' के उपरान्त जोड़कर एक पद किया है

उनके पीछे हिन्दू दल आ रहा था। राजा ही नहीं गिने जा सकते थे, राजपुत्रों को कौन कहे।

और दिशाओं के राजा सेवा करने आए थे, (उनकी फौजें जाती थीं अथवा) वह फौजों के साथ जा रहे थे। अपने अपने धन के गर्व से और युद्ध कौशलके कारण वे पृथ्वी पर नहीं समाते थे। बहुत से राजपुत्र चले जाते थे, उनके पैरों के बोझ से धरती काँपती थी। धूल भिन्न भिन्न पताकाओं (प्रताप के चिह्न) को ढके देती थी। युवा लोग इधर उधर दौड़ते थे, घोड़ों को नचाते थे और गाढ़ी बातें (आपस में) करते थे। उनके लाल, पीले, काले चामर थे और कानों पर कुंडल डोलते थे। उनके इधर उधर लौट पौट करने पर ऐसा जान पड़ता था मानों युग का परिवर्तन हो रहा हो। तुमुल तबल और निशानों के मारे कान से (कुछ) सुनाई नहीं पड़ता था, एक दूसरे को संज्ञा से बोध कराता था। खच्चर गदहे और लाखों बैलों का क्या अन्त था?) कोटि तो भैंसे ही थे। सवारों के चलने से, पैदल चलने से पृथ्वी छोटी हुई जाती थी।

पीछे[1] जे पडिआ तॅ लडखडिआ[2] वइठहिं ठामहि[3] ठामा
गोहण नहि[4] पावहिं वथ्थु, नइवाहिँ[5], भूलल भुलहि गुलामा[6]
तुलकन्हि के फौदें हउदे हउदे[7] चप्परि चौदसि[8] भूमी।
अओताक धरन्ते कलह करन्ते हीदू उतराथि[9] भूमी॥
अस पष एक चोई गणिअ न होइ सरइ चासर माणा।
वारिग्गह मण्डल दिग आखण्डल पट्टन[8] परिठम भाणा॥
जपणे चलिअ सुरुतान लेख परिसेप जान[9] को।
तरणि तेअ सम्वरिअ अट्ट दिगपाल कड्ड हो।
धरणि धूलि अन्धकार, छोड्ड पेअसि[10] पिअ हेरव।
इन्द चन्द आभास कमने परि एहु समय पेल्लव॥
कन्तार दुग्ग दल दमसि कहुँ खोणि खुन्द पअ भार भरे।
हरि शँकर तनु एक[11] रहु वम्भ होअ डगमगिअ डरे॥
महिस उठु मनुसाए[12] धाए असवारहिं मारिअ।
हरिण हारि हल वेग धरए करे पाइक पारिअ॥
तरसि रहिअ सस मूस उड्डि आकास पक्खि जा[13]।
एहु पाए दरमणिअ[14] ओहु सचान खेदि खा[15]॥

१ पाछे। २ लटखरिआ। ३ वैसहि। ४ क० न। (पावहि, रखन दा मुविहि भूपल भवहि गुलावा। ६ क० (फोदें) फौदें। उतरहि। ८ पुहमी। ६ लग्व परिवंख गयौ। १० ख० चकि। ११ ख० में 'एक्कु' के स्थान पर 'मिलि' है, संभवतः 'मिलि एक्कु' यह पाठ रहा होगा। १२ अगिराइ १३ (मूसा) पेखिआ (का) स उड्डिजा। १४ दरमरिअ। १५ क० सचान वेदिपा।

जो पीछे पड़ गए, वह लड़खड़ाने लगे, जगह जगह बैठ जाते थे। शोधन और कोई वस्तु नहीं पाते थे (?), उनको गुलाम भी भूल जाते थे। तुर्कों की फौजों के हौदों ने चारों ओर से भूमि घेर रक्खी थी। उनकी ताक रखते हुए कलह करते हुए हिन्दू ज़मीन पर चलते थे।......मेघ मंडल जैसे इन्द्र की दिशा को घेर लेता है इसी प्रकार सारे नगर को (सेना ने) घेर लिया था।

जिस समय सुल्तान चले उस समय के वर्णन के अन्त को कौन पहुँच सकता है। सूर्य देवता का तेज ढक गया, आठों दिक्पालों को कष्ट हुआ। पृथ्वी पर धूलि के कारण अन्धकार छा गया; छूटी हुई प्रेयसी प्रिय को ढूँढ़ती थी। इन्द्र और चन्द्र की दमक इस समय किस पर पड़ती ? सेना ने जंगल दुर्ग तहस नहस कर के पृथ्वी पद भार से कुचल डाली। विष्णु और शङ्कर का शरीर मिल कर एक हो गया और ब्रह्मा का हृदय भय से डग-मगाने लगा। भैंसा गुस्सा हो उठा दौड़ कर उसने सवार को ही मार दिया। हरिण हार कर भाग उठा, पैदल बड़े ज़ोर से उसे (?) हाथ से पकड़े रह सका। खरगोश और चूहे डर रहे, पक्षी आकाश को उड़ गए। इधर पैरों से कुचल डाला ... खेद कर खा जाता है।

इवराहिमसाह पञान ओ जं ज[1] सेना सञ्चरइ[2]।
खणि खेदि खुखुन्दि धसि मारइ जीवहु जन्तु न उव्वरइ॥
— एवञ्च दूर दीपान्तर राञन्हि करो निद्रा हरन्ते, दल विहल चूरि चोपल करन्ते[4], गिरि गह्वर गोहन्ते[5], सिकार खेलन्ते, तीर मीलन्ते, वन—विहार जलक्रीडा करन्ते, मधुपान रतोत्सव करी परिपाटि राज्य सुख अनुभवन्ते[6], परद्प्प भंमि भंजन्ते[7]।

वाट[8] सन्तरि तिरहुति पइठ।
तकत चहि[9] सुरुतान वइठ॥

दुहु केआनी[10] सुनि कहुं तं खणे भौ फरमाण।
केन पआरें निवसिअउँ[11] वड[12]समत्थ असलान॥
तो पअप्पइ[13] किंतिभूपाल-की कुमन्त पहु अकड़ि,[14]
हान वयण का समअ जम्पिअ[15], की परसेना गुणिअ[16],
काइ सत्तु सामथ्थ-कथिअ[17]।

---

[1] जहँ जहँ। २.संचरिअ। ३ खणि खेदि खुन्दि धरि मारिअ जिउअउ जन्तु न उद्धरिअ। ४ दरिविहद झरि चाप करन्ते। ५ यह पाट केवल ख में है। ६ 'वन विहार•••अनुभवन्ते' यह पाट ख० में नहीं है। वाट सन्तरि निपहृति पैठु तरखत चहि सुरुतान वैठु। क० तकम शा० तक्त। ८ क० चडि। ६ दुणौ कहानी। १० केन पनारे निग्गाइह। ११ अति। १२ पट्टिओ। १३ काह कुमत प्रभु किञ्जिअ। १४ क० हीन वयन की समअ अधि। १५ का•••गुणिअै। १६ क० काभि॰ कोपिअ।

इब्राहिमशाह के उस प्रयाण में जहाँ जहाँ सेना जाती थी, खेद कर, खुखंदकर पीस डालती थी, जीता हुआ जीव नहीं बचता था।

इस प्रकार दूर द्वीपों के राजाओं की निद्रा का अपहरण करते हुए, दलों को चूर्ण कर चौपट करते हुए, गिरि कन्दराएँ ढूंढते हुए, शिकार खेलते हुए, तीरन्दाजी करते हुए, वन में विहार और जल में क्रीडा करते हुए, मधुपान और रतोत्सव की रीति से राज्य सुख का अनुभव करते हुए, घूम घूम कर वैरियों का गर्व चूर्ण करते हुए, रास्ता पार कर सुल्तान ने तिरहुत में प्रवेश किया और तख्त पर चढ़ कर बैठे। दोनों कहानियाँ सुन कर उस समय यह हुक्म दिया (कहा) "असलान बड़ा समर्थ है वह किस प्रकार पकड़ा जाए"।

तब कीर्तिभूपाल बोले, "प्रभो, यह कैसा कुमन्त्र ? दीन वचन किस कारण कहे ? शत्रु की सेना का लेखा करने से क्या ? शत्रु की सामर्थ्य का क्यों बखान करते हैं—?

सव्वउँ देष्खउँ पिट्टि चडि हत्रो लावओ[१] रणभाए।
पापरें पापरें ठेलि कहुँ पकलि देत्रो असलान ॥

अज्जु वैरि उद्धरञो सत्तु जइ सङ्गर आवइ।
जइ तसु पष्ख सपष्ख इन्द अप्पन बल लावइ ॥
जइ ता रष्खइ शम्भु[३] अवर हरि बम्म महित भट।
फणिवइ लागु गोहारि चाप जमराए कोप कइ ॥
असलान जे मारञो तञो हु अञो तासु रुहिर लइ देञो पा।
अवमान समअ निअ जीव थके जै नहि पिट्ठ देपाए जा ॥
तव फरमाणहि वाँचिअइ मएलह मर्मे को मार[४]।
कित्तिसिंह के[५] पुरनहि सेना करिअउँ पार ॥
(भौला) छन्दः—पारि तुरङ्गम गण्डक का पाणी[६],
पर बल भंजन गरुअ महमद मदगामी[७]।
अरु असलाने फौंदे फौंदे[८] निअ सेना सज्जिअ।
भेरी काहल ढोल तवण रण नग[९] वज्जिअ ॥

१ हौ रा चौ (रण भाग)। २ पखर यो (जो) रि कै पक्करिअ देउ असलाण। ३ शा० का पाठ है। फ० मे 'शम्त्र' है और 'वष्खइ' के स्थान पर रष्खइ ? ४ (वाचिअै) सवण को सार। ५ रा। ६ पत्तरि तुरंगम मेल गण्डक के पाणी। ७ परबल भंजनिहार मनिक मह महअ गुमानी। ८ असलाणे ठाव ठाव। ९ तत्तूग।

सब कोई देखो (घोड़े की) पीठ पर चढ़कर मैं संग्राम वार्ता (? जय) लाता हूँ, किनारे किनारे ठेलकर असलान को पकड़े देता हूँ। यदि बैरी आज युद्ध भूमि में आवे तो बैर का उद्धार करूँ। यदि उसका साथी हो कर इन्द्र अपनी सेना पक्ष में लावे, यदि शम्भु हरि व ब्रह्मा के संग होकर उसकी रक्षा करें, यदि वह शेषनाग को भी पुकारने लगे और क्रोध करके यमराज के बाप को पुकारे, तब भी असलान को मारूं तब तो मैं मैं हूँ। उसका रक्त पैरों पर लाकर रख दूँ यदि अपमान के समय वह जीवन बचाकर पीठ न दिखा जाए। तब सब (फरमानों) का सार यह हुक्म सादिर हुआ—कीर्तिसिंह के साथ पूरी सेना पार हो।

बैरी के बल के दलन करने वाले, गुरु, महमद मद गामी (?) ने घोड़े पर गंडक का पानी पार किया। असलान ने फौज फौज (दलों) में अपनी सेना तय्यार की। भेरी, काहल, ढोल, तबल और रण तूर्य (तम्बूरे) बजे।

राए पुरहि का पुन्न पेत पहरा दुइ बेरा।
वेवि सेन संघट्ट भेल[1] वाजल[2] भट भेडा ॥
पाओ पहारे पुहवि कप्प गिरि सेहर डुट्टइ।
पलए विट्टि सञो पलइ काँडे पटवालह[3] फुट्टइ ॥
वीर हुकारें होहि आगु रोवंचिअ अंगे[4]।
चौदिस चकमक चमक होइ खग्गग्ग तरंगे[5] ॥
तोवि[6] तुरअ असवार धाए पइसथि परयुत्थे[7]।
मत्त[8] मतङ्गज पाछु होथ[9] फरिआइत सथ्थे[10] ॥
सींगिणि गण[11] टङ्कार भाव[12] नह[13] मण्डल पूरइ[14]।
पापर उड्डइ फौदें फौदें पर चकइ चूरइ[15] ॥
तामसे बड्डइ धीर दप्प विक्कम गुण चारी।
सरमहुँ[16] केरा सरम गेल सरमेरा सारी[17] ॥
चाँपिट मेइनि भेट[18] हो वमइ[19] कँएड कोदण्डे।
चोट उपटि पटया…डदे…थेघ निज भुज दण्डे[20] ॥

१ क० भेटें। २ क० वाजन। ३ पटवारग। ४ क० वीर वेकार आगु हो अथि रोमञ्चिअ अङ्गे। ५ ख० चहुदिस चमकक्कीअ मंक होइ मही खग तरंगे। ६ तोरि। ७ क० पर घथ्थें। ८ माल। ६ जाहि। १० फरिआत कुथे। ११ गुण। १२ भार। १३ महि। १४ पुरिअ। १५ पर चकइ चूरिआ। १६ सरविह। १७ क० मारी। १८ मारि। १६ पड़इ। २० चोट उपटि पटवार घे यरहा…भुअ दंड।

रायपुर के पूर्व खेतों में दोपहर के समय दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, प्रचंड भेरियाँ बजीं।

पाँव के प्रहार से पृथ्वी काँप उठी, पहाड़ों की चोटियाँ टूटने लगीं।-प्रलय वृष्टि सी पड़ने लगी। पटवारण (शब्द) से कान फूटने लगे। आगे बीरों की हुँकारें होने लगीं, अंगों में रोमांच हुआ। तलवारों की धाराओं के कारण चारों ओर चकाचौंध हो गई। तब भी घुड़सवार दौड़कर वैरी के दल में घुस जाते थे। पीछे मस्त हाथी फरक वाहियों के साथ हो लेते थे। सिंगियों की टंकार से आकाश मंडल पूरित हो गया। सेना (?) दल दल में उठ उठ कर वैरी के चक्र तोड़ने लगीं। विक्रम गुणशील वीर का दर्प क्रोध से बढ़ने लगा लज्जा की भी सारी लज्जा चली गई……।

चारों ओर पृथ्वी पर एक दूसरे से मुठभेड़ हो रही थी, कान से धनुष छूटते थे…… … … ………………… ……

हुङ्कारे वीरा गज्जन्ता, पाइक्का चक्का मज्जन्ता।
धावन्ते धारा टुट्टन्ता, सन्नाहा वाणे[2] फुट्टन्ता॥
राउत्ता रोसं लग्गीआ खग्गेही खग्गा भग्गीआ[3]।
आरुट्ठा सूरा आवन्ता ऊँमग्गे मग्गे धावन्ता[4]॥
एक्क्के एक्के भेटन्ता[5] परारी[6] लच्छी मेट्टन्ता।
अप्पा नामाना सारन्ता वेलक्के सच्च मारन्ता॥
ओआरे पारे बूझंता, कोहाणे वाणे जूझन्ता[7]।
दुहु दिसँ पाखर ऊँठ माँझ संगाम भेट हो[8]॥
खग्गे खग्गे संघलिअ, फुलुग उप्फलइ अग्गि को।
अस्सवार असिधार तुरअ राउँत सओ टुट्टइ[10]।
वेलक वज्ज निघात[11] काअ कवचहु सओ फुट्टइ[12]॥
अरि कुञ्जर पंजर सल्लि रह रुहिर धार गए गगण भर[13]।
रा किित्तिसिंह को कज्ज रसं[14] वीरसिंह संगाम कर॥

---

१ विदुम्माला छन्द। २ सहाणो वाणा। ख० में यह पंक्ति नहीं है। ४ उम्मग्गा मग्गा पेलंता, संगामे खेड्डी खेलंता। ५ एक गोरंगे (भेटन्ता)। ६ क० परारी। ७ क० अओ अवारा परा बुज्भन्ता। को आणो टाला जुज्झन्ता। ८ दुहु दिशि वज्भण वज्ज मास संगाम खेत हो। ६ अग्गफुलिंग उच्छरिअ। १० असिधार ओर तुरइ पक्खर सौ टुटहि। ११ वज्झ निपत्त। १२ काइ...सौ फुटहि। १३ (रुहिर) टिक गयणब्भ मर। १४ किित्तिसिंह के कज्ज वस।

छन्द । हुङ्कारों से वीर गर्जन करते थे, पैदल सवों को तोड़ते थे। तोड़ने पर धाराएँ (लाइनें) टूट जाती थीं। सन्नाह तागों से छूट जाते थे। रावतों को गुस्सा आता था, तलवारों से तलवारें टकराती थीं। क्रुद्ध शूर वीर आते थे और आगे तलवारों में दौड़ पड़ते थे। एक एक से भिड़ते थे, पराई लक्ष्मी को भेदते थे। अपने नाम उच्चारण करते हुए येल (?) के शत्रु को मारते थे। बार पार जान कर मल्ल (वीर) बाणों से जूझ जाते थे। दोनों ओर से सेनाएँ उठीं, संग्राम के मध्य में भेंट हुई। तलवार से तलवार मिलकर आग की चिनगारियाँ निकल पड़ीं अश्वा-रोही तलवार की धार रावत के घोड़े से टूटती थी। गजदल (?) का शरीर वज्र निर्घात के तुल्य शब्द के साथ [illegible] ([illegible]) कर फूटता था वैरी के हाथियों के पंजर (शरीर) जर्जर हुए। आकाश रुधिर की धाराओं से भर गया। राजा [illegible] के कार्य्य के लिए वीरसिंह संग्राम कर रहे थे।

— धम्म[1] पेष्खइ अवरु सुरुतान, अंतरीष्ख ओत्थविअ[2]
इंद चंद सुर सिद्ध चारण विज्जाहर[3] गह भरिग वीर
जुज्झ देष्खह कारण ।
जहिँ जहिँ संघल सत्तु घल तहिँ तहिँ पल लरवारि ।
शोणित मज्जाओ मेइनी किसिसिंह करु मारि ॥
छंदः[4]—पुले रुण्ड मुण्डो खुरो बाहुदण्दो,
सिआरू कलङ्कोइ[5] कङ्काल-खंडो ।
धरा धूरि लोट्टंत[6] डुट्टन्त काया,
लरंता चलंता पभालंति पाआ ।
अरुज्झाल अंतावली जाल बद्दा,
धमा वेग वूडंत उड्डंत गिद्धा ।
गअ्रग्डी[7] करंतो पिवतो भरंतो[8],-
महा मंसु खंडो परत्तो[10] भरंतो ।
सिआमार फेक्कार रोलं करंतो,
बुभुष्खा बहू डाकिनी हकरंतो[11] ।

---

१ ख० में 'धम्म...मारि' पाठ नहीं है। २ शा० ओच्छविअ। ३ शा० (चारण) निज्जाण (विज्जाहर) ४ भुजगप्रात छन्द। ५ सिआरे कलंकेय। ६ वूडच। ७ क० ललन्ता। ८ गया। ६ रमंतो। १० गा० परेतो। ११ सिआफाल फेक्कार तारं करती भुक्खावली डाकिनी हक्करन्ती।

(धर्म (राज) देख रहे थे। और सुल्तान देख रहे थे। अन्तरिक्ष का आच्छादन कर इन्द्र, चन्द्र, सुर, सिद्ध, चारणों से वीरों का युद्ध देखने के लिये नभोमंडल पूरित था। जहाँ जहाँ शत्रु से भेट होती थी वहीं तलवार चलने लगती थी। पृथ्वी पर रुधिर और मज्जा (थी)। कीर्तिसिंह मार काट कर रहे थे।

छन्द। रुंड मुंड पड़े हैं। (कोई रुंड) बाहुदंड (ऊपर उठाए) खड़ा है। शृगाल कंकाल के टुकड़े खखोल रहे हैं।

कटते हुए शरीर पृथ्वी पर धूलि में लोटते थे। लड़ते हुए चलते हुए पैर घुल जाते थे (?)। गिद्ध (जाल की तरह) चरमानेवाली आँतों में उलझ कर, चर्बी में जल्दी से डूब कर फिर उड़ जाते थे।

प्रेत गाता हुआ (?) पीता हुआ भरता हुआ, महा मांस के खंड (पेट में) भर रहा था और सी सी फेंके शोर कर रहा था। बहुत सी डाकिनियाँ भूख के मारे डकरा रही थीं।

वहुप्फाल[1] वेश्राल रोलं[2] करंतो,
उलट्टो पलट्टो पेलंतो कवंधो[3] ।
सरोसाहन भिन्ना करे देइ सानो,
उमस्से निसस्से विमुक्केइ पाणो[4] ।
जहाँ रत्त कल्लोल नाना तरंगो[5]
तहाँ[6] सारि रज्जो निमज्जो मयंगो ।

रकत करांगन[7] माँथ उफ़रि फेरवी फोरि पा[8] ।
हाथे न उट्ठए हाथि छाडि[9] वेश्राल पाछु जा ॥
नर कवंध धरफुलइ मम्म वेश्रावह पेल्लइ[10] ।
रुहिर तरंगिणि तीर भूत गए जरहरि[11] खेल्लइ ॥
उछलि डमरु[12] डेकार वर, सब दिसे[13] डाकिनो डकरइ ।
नर कवंध महि भरेइ, कित्तिसिंह रा रण करइ[14] ॥
वेवि सेन सङ्घट्ट खँग्ग खंडल नाहि मानहि[15] ।
संगर पलइ सरीर धाए गए चलिश्र विरानहिं ॥

१ मुहूफाल । ६ रंक । ३ उलट्टे पलट्टे कवधो पवर्धा । ४ सराधार ग्रतीने देइ सारामू, उसस्से निसस्मेय मुक्केय पाणं । ५ तहा...माया-तरंगो । ६ जहा । ७ करागव । ८ (माग) फेरि विफेरि पा । ६ पलटि । १० फर कवध चर फरै वेवि (इसके आगे का पाठ अस्पष्ट है) । ११ शा० जरफरि । १२ डवरु । १३ दह दिश । १४ रण कवधह माहि करै कीत्तिसिंघ संग्राम कर । १५ वेवि सयाण सघट्ट भे (अस्पष्ट पाठ) खग्ग ण माणहि । १६ अग्गिम परै सरीर वीर (अस्पष्ट) चहहि वराणहि ।

बेताल तरह तरह से शोर मचा रहे थे। कबंध उलटे पलटे होकर गिर पड़ते थे। सरोष, हाथ में शस्त्र लिए उच्छ्वास निश्वास में प्राण छोड़ देते थे।

जहाँ रुधिर की लहरें बहती हों, ऐसा स्थान ढूँढ़ कर हाथी मग्न होता था।

बेताल रक्त, कंकाल और सत्थे से तृप्त होकर फिर उसे फोड़ कर खाने लगता था। हाथी के हाथ से उठाए न उठने पर उसे छोड़कर उस के पीछे चला जाता था।

नरकबंध चरफराते थे, उसके मर्मस्थान में बेताल (?) घुस जाते थे। भूत रुधिर की नदी के किनारे 'जरहरि' खेलते थे।

डमरू की डकार उठती थी। चारों ओर डाकिनियाँ डकरती थीं नरकबंधों से मही भरी जाती थी (क्योंकि) राजा कीर्तिसिंह संग्राम कर रहे थे। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ थी, तलवार के टुकड़ों को कौन मानता। धरती पर शरीर गिर जाने पर भी दौड़ कर दूसरे शरीर को (योद्धा) पकड़ लेता था।

)

बहुप्फाल[1] बेआल रोलं[2] करंतो,
उलट्टो पलट्टो पेलंतो कवधो[3] ।
सरोसार्वत भिन्ना करे देइ सानो,
उमस्से निसस्से विमुक्केइ पाणो[4] ।
जहाँ रत्त कल्लोल नाना तरंगो[5]
तहाँ[6] सारि सज्जो निमज्जो मयंगो ।
रकत करांगन[7] माँथ उफरि फेरवी फोरि पा[8]
हाथे न उटठए हाथि छाडि[9] बेआल पाछु जा ॥
नर कबंध धरफलइ मम्म बेआवह पेल्लइ[10] ।
रुहिर तरंगिणि तीर भूत गण जरहरि[11] खेल्लइ ॥
उछलि डमरु[12] डेकार वर, सब दिसे[13] डाकिनो डकरइ ।
नर कबंध महि भरइ, कित्तिसिंह रा रण करइ[14] ॥
बेवि सेन सङ्घट्ट खँग्ग खंडल नाहि मानहि[15] ।
संगर पलइ सरीर धाए गए चलिअ घिरानहिँ ॥

१ मुहूफाल । ६ रंक । ३ उलट्टे पलट्टे कबधो पबधी । ४ सराधार नीने देइ साणमू, उसस्से निरस्मेय गुक्केय पाणं । ५ तहा…मादा-गो । ६ जहा । ७ करागव । ८ (माथ) फेरि निफेरि पा । ९ टि । १० फर कबध चर फरै वेवि (इसके आगे का पाट अस्पष्ट है) । शा० जरफरि । १२ डबरु । १३ दह दिश । १४ रण कवधह माहि कीत्तिसिंघ सगाम कर । १५ वेवि सयाण सघट्ट भे (अस्पष्ट पाठ) ग ण मारणहि । १६ अग्गिम परँ सरीर वीर (अस्पष्ट) चहहि वरायाहि ।

बेताल तरह तरह से शोर मचा रहे थे। कबंध उलटे पलटे होकर गिर पड़ते थे। सरोष, हाथ में शस्त्र लिए उच्छ्वास निश्वास में प्राण छोड़ देते थे।

जहाँ रुधिर की लहरें बहती हों, ऐसा स्थान ढूँढ़ कर हाथी मग्न होता था।

बेताल रक्त, कंकाल और मत्थे से तृप्त होकर फिर उसे फोड़ कर खाने लगता था। हाथी के हाथ से उठाए न उठने पर उसे छोड़कर उस के पीछे चला जाता था।

नरकबंध चरफराते थे, उसके मर्मस्थान में बेताल (?) घुस जाते थे। भूत रुधिर की नदी के किनारे 'जरहरि' खेलते थे।

डमरू की डकार उठती थी। चारों ओर डाकिनियाँ नाचती थीं नरकबंधों से मही भरी जाती थी (क्योंकि) राजा कीर्तिसिंह संग्राम कर रहे थे। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ थी, तलवार के टुकड़ों को कौन मानता। धरती पर शरीर गिर जाने पर भी दौड़ कर दूसरे शरीर को (योद्धा) पकड़ लेता था।

अन्तरिक्ख अछवारि. मल विज्जए अञ्चल[1] ।
भमर मनोभव भमइ पेम पिच्छल नअनञ्चल[2] ॥
गन्धव्व गीति दुन्दुहिअ अरं परिमन परिचए जान को[3] ।
वर कित्तिसिंह रण-साह सहि सुरअरु कुसुम सुविठ्ठ हो[4] ॥

तव्वे चिन्तइ मलिक असलान, सव्व सेन मह पलइ पातिसाह कोहान आइअ[5], अनअमहातरु फलिअ, दुठ्ठ देव मह निअर आइअ ।

तो पल जीवन पलटि कहुँ थिर निम्मल जस लेओ ।
कित्तिसिंह सओ सिंह सओ भट्ट मेलि एक देओ ॥

छन्दः ॥

हसि दाहिन हथ्थ समथ्थ भइ, रण रंग पलट्टिअ खग्ग लइ ।
तहिं एकहि एक पहार पलेअहिँ खग्गहि खग्गहिं धार धरे ।
हअ लग्गिय चंगिम चारु कला, तरवारि चमकइ विज्जुभला ।
टरि टोप्परि छुट्टि शरीर रहे, तनु शोणित धारहिं धार वहे ।
तनुरंग तुरंग[6] तरंग वसे, तनु छड्डइ लग्गइ रोस रसे ।

१ अंतरिक्ष अपसरा वाया यकै (अस्पष्ट) अचल । २ (अस्पष्ट) जनु भरे पेम पेखिअ नयणांचल । ३ ख० पाठ अस्पष्ट । ४ किचिसिंघ वर साहस सुर अरु कुसुम (अस्पष्ट) ख० पुस्तक यहां पर समाप्त हो जाती है अन्त में केवल 'शुभमस्तु' है । ५ शा० में 'आइअ' नहीं है । ६ क० में 'तुरग' नहीं है ।

अंतरिक्ष में अप्सराएं थीं (?) प्रेम चित्रित मनोभव रूपी भ्रमर उनके नयनों के कोनों में घूमता था। गन्धर्वों के गीत और (देव) दुन्दुभियों का परिमाण कौन जाने ? श्रेष्ठ राजा कीर्तिसिंह के संग्राम में साहस करते समय देवतरु से पुष्पवृष्टि होती थी।

तब मलिक असलान सोचने लगा, "मेरी सारी सेना गिर रही है, बादशाह गुस्सा होकर आए हैं। मेरा दुर्नीतिरूपी महा-वृक्ष फला है दुष्ट दैव मेरे निकट आ गया है—

तब भी एक बार जीवन (पर खेल कर) पलट कर स्थिर निर्मल यश पैदा कर लूँ। कीर्तिसिंह से सिंह समान एक योद्धा सो मिला हूँ। हँसकर समर्थ होकर, संग्राम में अनुरक्त दाहिने हाथ में तलवार लेकर पलट पड़ा। वहाँ (तब) एक के प्रहार दूसरे पर पड़े और तलवार ने तलवार की धार रोकी। घोड़ा चारु कला सुशोभित था, तलवार बिजुली की झलक के समान चमकती थी शरीर टूट टूट कर गिरने लगे, शरीर पर रुधिर की धाराओं पर धाराएँ बहने लगीं। घोड़ों का शरीर (रुधिर) तरँग से रंग गया, मानों क्रोध शरीर छोड़कर लग गया हो।

सव्वउँ जन पेक्खइ जुज्झु कहा, महभावइ अंज्जुन कन्न जहा।
नं आहव माहरं सत्तु करे, वाणासुर जुज्झइ वच्च भरे

महराअहि मल्लिकें चप्पिलिउँ,
असलान निआनहु पिठ दिउँ।
तं खणे पेक्खिअ राअ सो अरु सुक्खेअ करेओ।
जं करें मारिअ वप्प महु से कर कमन हरेओ॥

अरे अरे असलान प्राणकातर, अवज्ञातमानस, समरपरित्याग[1] साहस, धिक जीवनमात्ररसिक, की जासि अपजस साहि, मत्तु करी डिठि सओ पीठि दए, भाहु भेसुर क सोझ जाहि।

जै धकें जीवसि ऽऽ जीव सओ, जाहि जाहि असलान।
तिहुअण जग्गइ किरि मम, तुज्झु दिअउँ जिवदान॥
जइ रण भग्गसि तइ तोजे काअर,
अरु तोहि मारइ से पुनु काअर।
जाँहि जाँहि अनुसर गए साअर,
एम जप्पइ हसि हसि वे नाअर॥

तो पलट्टिअ जित्ति रण राए, शङ्ख ध्वनि उच्छलिअ, निरि गीत वज्जन वज्जिअ[2], चारि वेअ झंकार सुह महुत्त अहिषेक किज्जिअ।

सब कोई युद्ध देख रहा था और मन में अर्जुन और कर्ण की कथा की भावना करता था। अथवा वाणासुर और महादेव की कथा की। महाराज ने असलान को छाप लिया, मलिक ने पीठ दिखा दी। उस समय राजा ने देखकर और प्रहार किया "जिस हाथ से मेरे पिता का वध किया था वह हाथ कौन हर ले गया है? अरे अरे प्राणों के लिए डरपोक असलान, मन का निरादर करनेवाले समर में साहस छोड़नेवाले धिक्कार है तुम को। तुमको केवल जीवन से प्रेम है। अपजस सम्पादित करके कहाँ जाते हो, शत्रु की दृष्टि के सामने पीठ देकर! जैसे जेठ के सामने बहू चली जाती है। जहाँ जीव लेकर के जी सको असलान जाओ वहीं जाओ। मेरी कीर्ति त्रिभुवन में जागती रहेगी, मैं ने तुमको जीवनदान दिया। यदि तुम रण से भागते हो तो तुम कायर, और ऐसे तुम को जो कोई मारे वह भी कायर, जाओ जाओ जाकर सागर (?) का अनुगमन कर," इस प्रकार चतुर (राजा) हँस हँस कर कह रहे थे। फिर राजा रण जीत कर लौट पड़े, शंख की आवाज हुई, नाच गाना हुआ, बाजे बजे, चारों वेदों के ध्वनि के साथ शुभ मुहूर्त में अभिषेक किया गया।

बन्धव जन उच्छाह कर, तिरहुति पाइअ रूप।
पातिसाह जसु तिलक करु किर्त्तिसिंह भउ भूप॥
एवं सङ्गरसाहसप्रमथनप्रालब्धलब्धोदयां,
पुष्णाति श्रियमाशसाङ्कतरणीं श्रीकीर्तिसिंहो नृपः।
माधुर्यप्रसवस्थली गुरुयशोविस्तारशिक्षासखी,
यावद्विश्वमिदञ्च खेलनकवेर्विद्यापतेर्भारती॥

इति महामहोपाध्याय सट्टक्कुर श्रीविद्यापतिविरचितायां कीर्तिलतायां चतुर्थः पल्लवः समाप्तः। शुभम्।
[1]संवत् ७४७ वैशाख शुक्ल तृतीयायां तिथौ। श्री श्री जय जगज्ज्योतिर्म्मल्लदेवभूपनामाज्ञया दैवज्ञनारायण सिंहेन लिखितमिदं पुस्तकं सम्पूर्णमिति शिवम्॥

---

१ क० में प्रति लिपि करनेवाले का कुछ भी उल्लेख नहीं दिया है।

बान्धव जनों ने उत्साह किया; तिरहुत ने शोभा पाई। बादशाह ने जिसका तिलक किया, ऐसे कीर्तिसिंह राजा हुए।

इस प्रकार संग्रामभूमि में साहस करके शत्रु प्रमथन करने से उदित हुई लक्ष्मी को कीर्तिसिंह राजा जब तक सूर्य और चन्द्र रहें पुष्ट करते हैं (करें)। और जब तक यह विश्व वर्तमान है तब तक खेलनकवि श्रीविद्यापति की वाणी (कविता) जो माधुर्य की जन्मभूमि और महाकीर्ति फैलाने की शिक्षा देने में सखी के समान है विद्यमान रहे।

महामहोपाध्याय सट्ठक्कुर श्री विद्यापति की बनाई हुई कीर्तिलता में चौथा पल्लव समाप्त हुआ। शुभम्!

संवत् ७४७ के बैसाख मास की शुक्ल तृतीया तिथि को श्री श्री जय जगज्ज्योतिर्मल्लदेव राजा की आज्ञा से दैवज्ञ नारायणसिंह की लिखी यह पोथी समाप्त हुई। शुभम्॥